यज्ञ और विज्ञान
16·3

प्रकाशक :
वैदिक प्रकाशन,
एन एच १७, पल्लवपुरम-२
मेरठ—२५० ११०
दूरभाष: ०१२१-५७०६५७

मूल्य : बीस रुपये

मुद्रक :
उर्वशी प्रेस
४९/३, वैद्यवाड़ा
मेरठ—२५०००२
दूरभाष : ५२२४५८

लेखक का जीवन-परिचय

जन्म—डॉ० जगदीशप्रसाद का जन्म श्रावण शुक्ला पंचमी, सम्वत् १९८५ विक्रमी (३१ जुलाई, १९२८) को ग्राम पूठड़ी, जिला मेरठ (उत्तर प्रदेश) में हुआ। आपकी माता श्रीमती बहालोदेवी तथा पिता श्री नारायणदास थे।

शिक्षा-दीक्षा—आपकी प्रारम्भिक शिक्षा निकट के ग्राम ढिंढाला की पाठशाला में हुई। आपने १९४५ में देवनागरी इण्टर कॉलिज, मेरठ से हाईस्कूल, मेरठ कॉलिज, मेरठ से १९४७ में इण्टरमीडिएट व १९४९ में बी० एससी०, १९५० में हिन्दी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग से साहित्यरत्न तथा १९५२ में बिरला कॉलिज, पिलानी (राजस्थान) से एम० एससी० (रसायन) परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से १९६२ में रसायन में पीएच० डी० तथा १९९२ में मेरठ विश्वविद्यालय से रसायन में डी० एससी० की उपाधियाँ प्राप्त कीं।

यद्यपि आपने हाईस्कूल तक उर्दू-अंग्रेजी और बाद में बंगला, पंजाबी, जर्मन तथा फ्रेंच भाषाएँ पढ़ीं, किन्तु हिन्दी-संस्कृत के प्रति आपका विशेष प्रेम रहा है। इसी कारण आपने १९८५ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से हिन्दी में साहित्य-महोपाध्याय (पीएच० डी०) की उपाधि प्राप्त की और १९९६ में संस्कृत में डी० लिट० की उपाधि हेतु अपना शोध-प्रबन्ध विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया है। भारत, एशिया, यूरोप तथा अमरीका, आदि की हिन्दी, अंग्रेजी, रूसी तथा जर्मन भाषाओं की अन्तरराष्ट्रीय स्तर की शोध-पत्रिकाओं में आपके रसायन, भौतिकी, गणित, हिन्दी, संस्कृत, भूगोल तथा शिक्षा-शास्त्र विषयों में लगभग डेढ़ सौ शोध-लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

सेवा-कार्य—आपने १९५२–५३ में के० वी० इण्टर कॉलिज, माछरा (मेरठ) में तथा १९५३–५७ में सीताशरण इण्टर कॉलिज, खतौली (मुजफ्फरनगर) में

रसायन-प्रवक्ता के रूप में सेवा-कार्य किया। आप १९५७–६० में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में रिसर्च असिस्टेण्ट के रूप में तथा १९६०–६१ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में ही रसायन विभाग में प्राध्यापक रहे। तत्पश्चात् आप १९६१ से १९९१ तक मेरठ कॉलिज मेरठ में रसायन-विभाग में प्राध्यापक रहे, जहाँ से १९९१ में आप सेवानिवृत्त हुए।

१९४१ से आप राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक हैं। संघ के सत्याग्रही के रूप में ९ दिसम्बर, १९४८ से १२ फरवरी, १९४९ तक आप मेरठ तथा आगरा केन्द्रीय कारागार में बन्दी रहे। १९८६ से आप तन-मन-धन से सेवाभारती नामक संस्था द्वारा वाल्मीकि-जाटव आदि वंचित बन्धुओं की सेवा के कार्य में लगे हुए हैं।

विशेषताएँ—जगदीश जी बाल्यकाल से ही सांसारिक विषयों से विरक्त एवं आध्यात्मिक रहे हैं। सेवा-साधना के लिए आपने १४ वर्ष की कुमारावस्था में ही आजीवन अविवाहित रहने का प्रण कर लिया था, जिसे आपने पूरा कर दिखाया है। आप मान-अपमान, हानि-लाभ, सुख-दुःख, हर्ष-शोक में सदैव एक-समान रहते हैं। सांसारिक रूप-सौन्दर्य, धन-ऐश्वर्य, पद-प्रतिष्ठा, आदि आपको कभी मोहित नहीं कर पाए हैं।

डॉ० प्रसाद सीधे, सरल, मधुरभाषी तथा विनम्र स्वभाव के व्यक्ति हैं। आपने अनेक निर्धन-निराश्रित बालकों की शिक्षा हेतु तथा गुरुकुलों व अन्य सामाजिक-धार्मिक संस्थाओं की धन द्वारा पर्याप्त सेवा की है। आप अनेक वर्षों से निर्धन एवं अस्पृश्य समझे जानेवाले बालक-बालिकाओं को अंग्रेजी, विज्ञान एवं गणित विषय निःशुल्क पढ़ाते रहे हैं। आप अपने घनिष्ठ मित्रों के सुख-दुःख में सदैव सहायक रहते हैं। आप महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुयायी तथा कर्मठ आर्य हैं।

निदेशक
वैदिक प्रकाशन, मेरठ

ओ३म्

भूमिका

परमपिता परमात्मा ने सृष्टि-उत्पत्ति के साथ ही, वेद-ज्ञान दिया और सम्पूर्ण सृष्टि के कल्याण हेतु यज्ञ की उत्पत्ति की। संसार की सम्पूर्ण उन्नति का मूल केवल यज्ञ है। याज्ञवल्क्य ऋषि ने तो यज्ञ को श्रेष्ठतम कर्म बताया है। संसार में जो भी कल्याण के कार्य हैं वे सभी यज्ञ हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने यज्ञ के पाँच भेद बताये हैं—ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ (अग्निहोत्र), बलिवैश्वदेवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ। यदि संसार के सभी नर-नारी ये पाँच यज्ञ नित्यप्रति करें तो संसार में कोई रोग-शोक, अन्याय, अत्याचार और दुःख नहीं रहेंगे।

वर्तमान में अधिकांश मुनष्य इन पञ्चयज्ञों को विस्मृत कर केवल शारीरिक भोग में लिप्त हैं, इसीलिए सर्वत्र दुःख ही दुःख दिखाई देता है।

इन पञ्चयज्ञों में भी देवयज्ञ (अग्निहोत्र) सर्वोत्तम यज्ञ है क्योंकि इस यज्ञ में मनुष्य घृत, औषधियाँ, समिधाएँ, समय, बुद्धि आदि को अपने व संसार के कल्याण के लिए होम कर देता है। इस अग्निहोत्र से हमारे शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक दुःख दूर होकर हमें सभी सुखों की प्राप्ति होती है।

प्रस्तुत पुस्तक 'यज्ञ और विज्ञान' में आदरणीय डॉ० जगदीश प्रसाद ने अथक परिश्रम एवं खोज कर यज्ञ के वैज्ञानिक स्वरूप को प्रस्तुत किया है, जिससे स्वयं को आधुनिक, प्रगतिशील कहनेवाले तथा

यज्ञ के प्रति अज्ञानी मनुष्य यह जान सकें कि अग्निहोत्र करने से हमारा तथा सम्पूर्ण संसार के प्राणियों का कितना अधिक कल्याण होता है। प्रस्तुत पुस्तक में यज्ञ से होनेवाले शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और वानस्पतिक लाभों को वैज्ञानिक रूप में सप्रमाण सिद्ध किया गया है।

मुझे विश्वास है कि इस पुस्तक को पढ़कर पाठकों के मन में यज्ञ के प्रति आस्था एवं श्रद्धा बढ़ेगी तथा वे भी अपने व औरों के जीवन को सुखी एवं आनन्दपूर्ण बनाने के लिए अग्निहोत्र करने के लिए प्रेरित होंगे।

चैत्र शुक्ल १, २०५४ वि०
(८ अप्रैल, १९९७)

डॉ वेदप्रकाश
निदेशक
वैदिक प्रकाशन
मेरठ

आभार

प्रस्तुत पुस्तक में जिन पुस्तकों से सहायता ली गयी है, उनके लेखकों एवं प्रकाशकों के हम अत्यधिक आभारी हैं।

डॉ० जगदीशप्रसाद

उद्देश्य

प्रस्तुत पुस्तक को प्रकाशित करने का मुख्य उद्देश्य केवल वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार तथा यज्ञ के प्रति मानव-मात्र की श्रद्धा उत्पन्न करना है।

प्रकाशक

विषय-सूची

१. यज्ञ क्या है ?

जगदुत्पादक-सृष्टिकर्त्ता परब्रह्म ने सोचा कि जीवों द्वारा इस पृथ्वी को मलमूत्रादि द्वारा, वायु एवं अन्तरिक्ष को श्वास-प्रश्वास तथा अन्य दुर्गंधयुक्त क्रियाओं द्वारा और जलों को विविध कारणों से प्रदूषित कर देने से जीवन का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। अतः उसने आदि-सृष्टि में अवतरित अग्नि-वायु-आदित्य-अंगिरा ऋषियों के माध्यम से वेद-ज्ञान मानव-कल्याण के लिए दिया, जिसमें उसने 'यज्ञ' नामक क्रिया का उपदेश दिया। उसने सम्पूर्ण जगत् में व्यापनशील विष्णुरूप 'यज्ञ' के द्वारा सृष्टि के सभी देवों को संतुष्ट तथा तृप्त करने का उपाय "यज्ञो वै विष्णु" वाक्यांश में बता दिया।

यज्ञ से उठता हुआ सुगंधित धूम्र अन्तरिक्ष से आगे बढ़कर द्युलोक तक पहुँचता है। यह औषधिगुणयुक्त धूम्र वायु को शुद्ध करके मेघों के माध्यम से जल को पवित्र कर देता है। यह शुद्ध वर्षा-जल पृथ्वी के मलों को धोकर स्वच्छ करता है और पर्जन्य पिता के बरसने से यह भूमिमाता शस्यशालिनी होकर अनेक वृक्षों, वनस्पतियों तथा जीवों को अपने गर्भ से बाहर प्रकट करती है। इसीलिए अथर्ववेद[१] (१२/१/१२) में ऋषि ने कहा, "माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। पर्जन्य पिता स उ नः पिपर्तु ॥"

यज्ञ एक व्यापक शब्द है। ऋग्वेद में यह शब्द ५८० बार, यजुर्वेद में २४३ बार, सामवेद में ६३ बार तथा अथर्ववेद में २९८ बार, अर्थात् चारों वेदों में यज्ञ शब्द ११८४ बार आया है। निघण्टु के अनुसार, यज्ञ को वेव, अध्वर, मेध, निमध, सबनम, अग्निहोत्र, देवता, मख, विष्णु, इन्द्र, धर्म, प्रजापति आदि नामों से पुकारा जाता है।

'यज्ञ' शब्द 'यज्' धातु से बना है। 'यज्' धातु के तीन अर्थ हैं : 'यज् देवपूजा संगतिकरण दानेषु'—(अ) देवपूजा, (आ) संगतिकरण तथा (इ) दान। अतः यज्ञ के विविध प्रकार—देवयज्ञ (अग्निहोत्र या हवन), ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, बलिवैश्वदेवयज्ञ, अतिथियज्ञ, अश्वमेधयज्ञ आदि में यज्ञ

के प्रायः सभी अर्थ समाविष्ट हैं ।[२,३] संसार के विभिन्न देशों में अनादि काल से यज्ञ होता आया है, भले ही आज उसका रूप दीपक या मोमबत्ती ने ले लिया है ।[४]

प्रस्तुत विषय की सीमा में रहते हुए, यज्ञ के एक प्रकार—देवयज्ञ पर, विशेषतः पर्यावरण व विचार-प्रदूषण-मुक्ति के संदर्भ में, वस्तुस्थिति प्रस्तुत है ।

२. यज्ञ के पाँच प्रमुख अंग

वैदिक यज्ञ के पाँच प्रमुख अंग हैं : (अ) समिधा, (आ) गोघृत एवं औषधियाँ (इ) पात्र, (ई) मन्त्र तथा (उ) भावना ।

(अ) समिधा—

समिधा में सबसे महत्वपूर्ण गौ या गौ-वंश का सूखा गोबर—उपले आते हैं । यज्ञ में औषध आदि के गुण उत्पन्न करने के लिए आम, वट, (बरगद), औदुम्बर (गूलर), पलाश (ढाक), अश्वत्थ (पीपल) तथा बेल आदि की लकड़ियाँ भी प्रयुक्त की जा सकती हैं । सभी चिकित्सा-पद्धतियाँ गाय के गोबर के औषधि-गुणों का समर्थन करती हैं । विश्व के सभी देशों की प्राचीन चिकित्सा-पद्धतियों में रोग-निवारण के लिए गाय के गोबर का प्रयोग किया जाता है । गाय के गोबर में मेन्थॉल, अमोनिया, फ़िनॉल, इन्डॉल, नाइट्रोजन (०·३२ प्रतिशत) फॉस्फोरिक अम्ल (०·२१ प्रति शत), तथा पोटाश (०·१६ प्रति शत) पाए जाते हैं ।[५]

इटली के वैज्ञानिक डॉ० बिगेड की खोज है कि गाय के ताजे गोबर की गंध मात्र से ज्वर तथा मलेरिया के जीवाणु नष्ट हो जाते हैं । 'न्युयॉर्क टाइम्स' के अनुसार, "पोषक आहार पर पली गाय के गोबर से कीटाणुनाशक शक्ति अन्य नहीं है ।" गाय के गोबर से लिपीपुती वस्तुएँ तथा घर की दीवारें अणु-विस्फोट के घातक विकिरणों की रोकथाम करती

हैं तथा अन्तरिक्षयान में उत्पन्न होने वाली भीषण गर्मी को गाय का गोबर दूर करता है—यह रूसी वैज्ञानिकों की खोज है। गाय के गोबर के सूखे चूरे का धूम्रपान कराकर दमा का रोग ठीक करने में पश्चिम-देशों के डॉक्टर रुचि ले रहे हैं। स्वतः सिद्ध है कि गाय के गोबर से बने उपलों में, और उसके जलने से उत्पन्न धुएँ में औषधि-तत्त्व विद्यमान रहते हैं।

(आ) गोघृत एवं औषधियाँ—

वेदोक्त यज्ञ में दूसरी महत्त्वपूर्ण एवं अपरिहार्य आवश्यकता है—गोघृत। यद्यपि गोघृत के साथ कस्तूरी, केशर, अगर-तगर, श्वेत चन्दन, इलायची, जायफल तथा जावित्री आदि सुगंधित, दूध, फल, कन्द, चांवल, गेहूँ, उड़द आदि पुष्टिकारक, शक्कर, मधु, छुवारे तथा दाख आदि मिष्ट और अमृता (गिलोय) आदि औषधियाँ[६] प्रभाव (गुण) विशेष प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त की जा सकती हैं, तथापि अकेला गोघृत भी हव्य के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। भैंस या किसी अन्य पशु के घृत या वनस्पति-घी को यज्ञ में प्रयुक्त करने से वायु-प्रदूषण बढ़ता है, जबकि गोघृत के प्रयोग से वायु-प्रदूषण दूर होता है। इसलिए, अथर्ववेद (२/१३/१) ने शुद्ध (गो-)घृत को यज्ञाग्नि में डालकर यज्ञ करने से आयु-प्राप्ति की बात कही है।

गोघृत व अन्य पदार्थों के साथ गोदुग्ध भी प्रयुक्त कियां जा सकता है। एक स्थान पर प्रार्थना की गई है कि गौ के दूध-घी की आहुतियों से हवन करने से वातावरण शुद्ध होता है और वातावरण सभी चौदह भुवनों में एक ही होने से सभी चौदह भुवनों का कार्य सुचारु रूप से चलता है—चौदह भुवन गौ के शरीर में तथा परलोक में कल्याण करें।[७]

यज्ञों की विविधता तथा सर्वव्यापकता को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है, जैसे यह सृष्टि यज्ञ के लिए ही रची गई है और यज्ञ-सम्पादन के लिए गौ का निर्माण हुआ है। सम्भवतः इसीलिए "गावो विश्वस्य मातरः" का उद्‌घोष किया गया है।

गोघृत में कौन-कौन से पदार्थ होते हैं? यह अभी पूर्णतः स्पष्ट

नहीं हुआ है। अब तक की खोजों के अनुसार, गोघृत में ग्यारह अम्ल, बारह धातुएँ, दो लैक्टोज़ तथा चार गैसीय पदार्थ होते हैं।

गाय के घी को चावलों में मिश्रित करके, मन्त्रोच्चारणपूर्वक जब अग्निहोत्र में आहुति दी जाती है, तब उस आहुति के जलने से उत्पन्न चार गैसें अभी तक पहचानी जा चुकी हैं। वे हैं: (अ) एथिलीन ऑक्साइड, (आ) प्रापिलीन ऑक्साइड, (इ) फार्मल्डिहाइड तथा (ई) बीटा-प्रोपियो-लैक्टोन[८]। गोघृत के ज्वलन से उत्पन्न इन गैसों में कई रोगों को तथा मन के तनावों को दूर करने की अद्‌भुत क्षमता है।

चावलों में बारह प्रति शत आर्द्रता तथा शेष मांड (स्टार्च) होता है। चावल के कठोर कवच में तैलीय द्रव रहता है। इसमें पर्याप्त मात्रा में ओलीन तथा ऐल्बुमिनस पदार्थ होता है। यही एक मात्र ऐसा अनाज है जो विश्वभर में उपलब्ध तथा प्रयुक्त होता है। यज्ञ विश्वधर्म है। अतः यज्ञ की आहुति में चावल का समावेश है।[५]

(इ) पात्र—

यज्ञ करने के लिए चाहे पृथ्वी में गड्‌ढा खोदा जाए, चाहे लोहा-ताँबा आदि किसी धातु के पात्र का प्रयोग किया जाए, किन्तु प्रत्येक दशा में पात्र के आन्तरिक भाग की एक विशेष आकृति होती है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार[९], हवनकुण्ड की ऊपरी सिरे की लम्बाई (= चौड़ाई) सोलह अंगुल, नीचे (पेंदी) की लम्बाई (= चौड़ाई) चार अंगुल तथा गहराई सोलह अंगुल होती है (चित्र १)। हवनकुण्ड को छोटा या बड़ा बनाने में, इसकी ऊपरी-निचली सतहों तथा गहराई का अनुपात यही रखा जाता है। महाभारत-काल के पश्चात्, वैदिक कर्मकाण्डों में कुछ दोष आ गए। वाम-मार्ग, तन्त्रविद्या तथा पशु-हिंसा-प्रधान यज्ञों ने हवनकुण्ड के आकारों में भी परिवर्तन कर दिया।

मनोहर माधव जी पोतदार द्वारा लिखित 'अग्निहोत्र' नामक पुस्तक[६]
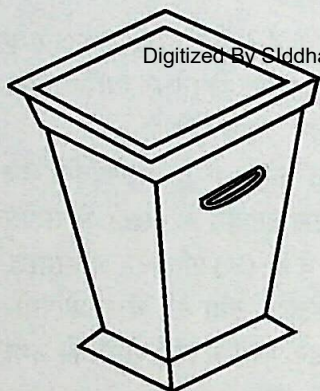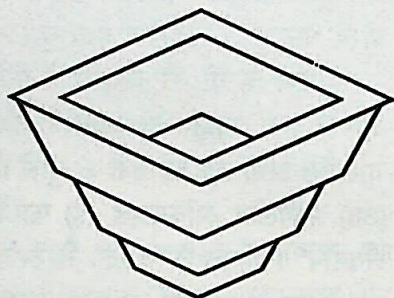
चित्र १ चित्र २

में पिरेमिडी-छन्नक (फ्रस्टम ऑफ़ ए पिरेमिड) आकार के हवनकुण्ड का प्रतिपादन किया गया है। इनके अनुसार, इस आकार का यज्ञकुण्ड मिट्टी या किसी धातु का बनाया जा सकता है। वर्ग-पिरेमिडी-छन्नक आकार का ताँबे का बना हवनकुण्ड सर्वोत्तम पाया गया है (चित्र २)। आधुनिक वैज्ञानिक प्रयोगों की कसौटी पर भी यह खरा उतरा है।

संसार के सप्त आश्चर्यों में से एक है मिस्र देश में बने पिरेमिड, जिनमें प्राचीन मिस्री महापुरुषों के शव (ममीज़) सहस्रों वर्षों से, बिना सड़े-गले सुरक्षित रखें हैं। उनके रहस्य पर अनुसन्धान करके एक पाश्चात्य वैज्ञानिक ने 'साइकिक डिस्कवरीज़ बिहाइण्ड आयरन कर्टेन' नामक एक पुस्तक लिखी है, ज़िसमें पिरेमिड आकार के प्रभावों का सविस्तार वर्णन किया गया है। उसके अनुसार, इस पिरेमिड के अन्दर विद्युत्- चुम्बकीय शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं, जो किसी वस्तु को सड़ने-गलने से रोकती हैं। अमरीका की अन्तरिक्ष अनुसन्धान संस्था (नासा) के वैज्ञानिकों के अनुसार, पिरेमिड-ऊर्जा सौर-ऊर्जा से कई गुना अधिक क्रान्तिकारी सिद्ध होगी।

पिरेमिड के आकार में आनेवाली विद्युत्-चुम्बकीय शक्तियाँ खाद्य पदार्थों तथा कच्चे दूध आदि को कई दिनों तक टिकाए रखती हैं। इस आकार के अन्दर रखे शव न सड़ते-गलते हैं और न वे दुर्गंध उत्पन्न

करते हैं। चेकोस्लोवाकिया के कारेल ड्रबान सदृश वैज्ञानिकों ने पिरेमिड

आकार के भवन तथा वाहन आदि बनाकर अनुभव किया है कि इस आकार के अन्दर विचित्र शक्तियाँ खेला करती हैं। मानसिक रूप से अशान्त व्यक्ति इस प्रकार के भवनों में अनोखी शान्ति अनुभव करते हैं। रोगी अन्य अस्पताल-भवनों की अपेक्षा, इस आकार के अस्पतालों में शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ करते हैं। प्लैग्न नामक वैज्ञानिक का कथन है कि पिरेमिड-शक्ति का रहस्य अति सूक्ष्मतरंगों (माइक्रोवेव्ज़) में निहित है। ये माइक्रोवेव अत्यन्त सूक्ष्म तरंग-दैर्घ्य वाले विद्युत्-चुम्बकीय विकिरण होते हैं। पिरेमिड आकार माइक्रोवेव सिगनलों (संकेतों) का एक दक्ष अनुनादक (रिज़ोनेटर) होता है।

पिरेमिड आकार में विद्युत्-चुम्बकीय शक्तियाँ केन्द्रीभूत होकर, अन्दर रखे हुए पदार्थों का संरक्षण करती हैं। अग्नि-पात्र (हवनकुण्ड) में ये ही शक्तियाँ अन्तरिक्ष में निर्मित होनेवाली प्रचण्ड शक्तियों का केन्द्रीकरण करके, उन्हें अपने आसपास के वायुमण्डल में प्रसारित करती हैं। रिक्त रखा हुआ अग्नि-पात्र भी जब इस प्रकार शुद्धिकरण का कार्य कर सकता है तब उच्च भावनायुक्त आहुति के पदार्थ एवं मन्त्र-ध्वनि से वायुमण्डल में उत्पन्न ध्वनि-तरंग (कम्पन) समन्वित होकर अकल्पित रूप में कितना बड़ा कार्य करते होंगे, यह कल्पना का ही विषय है।

उपर्युक्त पुस्तक में दस लाख डॉलर की उस योजना का भी उल्लेख है जिसको कैरो (मिस्र) के निकट गिज़ेह नामक स्थान पर एक वर्ष से भी अधिक समय तक चलाया गया था। इस योजना के अन्तर्गत आधुनिक अन्तरिक्ष युग से सम्बन्धित समस्त इलेक्ट्रॉनिकी यन्त्र लगाए गए थे, जो पिरेमिड के अन्दर पहुँचनेवाली अन्तरिक्ष रश्मियों (कॉस्मिक रेज़) का दिन-रात टेप-रिकार्ड तैयार करने में व्यस्त रहे। इस योजना के कार्यभारी अधिकारी डॉ० अम्र गोहेड ने 'टाइम्स ऑफ लन्दन' नामक पत्रिका को बताया कि वैज्ञानिक एक कठिन स्थिति में फँस गए हैं। पिरेमिड के अन्दर जो कुछ घटित हो रहा है, वह आधुनिक विज्ञान तथा इलेक्ट्रॉनिकी

के समस्त ज्ञात नियमों की अवहेलना कर रहा है। उन्होंने स्वीकार किया

है कि पिरेमिड के अन्दर कोई ऐसी अदृश्य शक्ति कार्य कर रही है जो विज्ञान के समस्त नियमों का उल्लंघन कर रही है।

पिरेमिड आकार के पात्र में विधिपूर्वक यज्ञ करने पर वायुमण्डल के शोधन सम्बन्धी कितने असामान्य परिणाम प्राप्त हो सकते हैं, यह कल्पना नहीं वरन् वास्तविकता है।

उपर्युक्त कथन में पिरेमिड आकार के ताँबे के यज्ञपात्र का उल्लेख हुआ है। यह महत्त्वपूर्ण है। यूनानी भाषा के 'पायरो' या 'पायर' अर्थात् 'अग्नि', और 'एमिड' अर्थात् 'बीच में' शब्द का अर्थ है—'वह आकार जिसके बीच में अग्नि हो।'

यूँ तो यज्ञ-पात्र किसी भी पदार्थ का बनाया जा सकता है, किन्तु इसके लिए ताँबा धातु सर्वोत्तम है। इस धातु का सर्वोत्तम विद्युत-वाहन-गुण सर्वविदित है। इसी कारण इसका उपयोग विद्युत्-उपकरणों के बनाने में होता है। यूगोस्लाविया के एक परमाणु-विशेषज्ञ के अनुसार, सभी धातुओं के मूल अणुओं के विभिन्न आकार होते हैं। ताँबा धातु के मूलाणु का आकार पूर्णतः पिरेमिडी आकार (यज्ञ-पात्र) का ही है। यह खोज सिद्ध करती है कि ताँबा धातु का निर्माण यज्ञ-पात्र के लिए हुआ है।

(ई) मन्त्र—

"स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।" इस वाक्य ने स्वतन्त्रता-प्रेमी लोगों के हृदयों में घर कर लिया था। यह समय था स्वतन्त्रता-आन्दोलन के काल का। वैसे देखा जाए तो उपर्युक्त वाक्य के पाँच शब्दों में कोई विशेषता प्रतीत नहीं होती है। परन्तु, अपनी घनगम्भीर वाणी से लोकमान्य तिलक ने जब इन शब्दों का उच्चारण किया था, तब इन शब्दों में उन्होंने अपनी स्वतन्त्रता-संग्राम की तपस्या तथा स्वतन्त्रता-प्राप्ति की उत्कट भावना का बीजारोपण किया था। इसी

कारण, सहज रूप से निकले ये शब्द जिस-जिस के कानों पर पड़े, उसके

ऊपर इन शब्दों ने जादू का काम किया।

मन्त्ररूपी वर्णमाला शब्द या शब्द-समूह ऋषियों ने अपने तपाचरण द्वारा सिद्ध कर रखे हैं। इसीलिए उन शब्दों में शक्ति है। यदि तिलक के वाक्य की शक्ति को हम अनुभव कर सकते है, तो ऋषियों द्वारा सिद्ध शब्दों की शक्ति क्यों न मानी जाए?

शब्द दो प्रकार के होते हैं: (अ) नित्य शब्द तथा (आ) कार्य-शब्द। जो शब्द नित्य होते हैं या जिनसे निर्मित कम्पन नित्य स्वरूप के होते हैं, उन्हें नित्य शब्द कहते हैं। कार्य-शब्द का उदाहरण लोकमान्य तिलक के उपर्युक्त शब्द हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद इन शब्दों में वह चैतन्य न रहा जो स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व था। वेदों के शब्द नित्य होने से, सहस्रों वर्ष पूर्व इनमें जो शक्ति थी, वही आज भी है और भविष्य में भी रहेगी। ऐसे नित्य तथा सामर्थ्यवान् शब्दों को ही मन्त्र कहते हैं।

वेद संस्कृत भाषा में हैं। संस्कृत भाषा संसार की समस्त भाषाओं की जननी है। इसके विशिष्ट शब्दों से विशिष्ट ध्वनि ही निकलती है और वायुमण्डल पर उसका विशिष्ट ही परिणाम होता है। यदि शब्दों में परिवर्तन हुआ, तो ध्वनि में परिवर्तन हो जाएगा। एक ही अर्थ के कई शब्द हों तो उन शब्दों से निर्मित ध्वनि-कम्पन अलग-अलग होंगे और उनके परिणाम भी भिन्न होंगे। समान अर्थ के दो शब्द होते हुए भी, एक के स्थान पर दूसरे को प्रयुक्त नहीं किया जा सकेगा। उदाहरणार्थ—"अग्नये स्वाहा" के स्थान पर "पावकाय स्वाहा" नहीं कहा जा सकेगा। स्पष्ट है कि यज्ञ के मन्त्रों के किसी अन्य भाषा में अनुवाद का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

यज्ञ के मन्त्रों में आए 'अग्नि', 'सूर्य', 'प्रजापति' शब्द ईश्वरवाचक हैं और मात्र एक ईश्वरशक्ति के ही विविध तेजगुणों का वर्णन करते हैं। इन मन्त्रों का अर्थ है—'मैं अग्नि, सूर्य तथा प्रजापति को आहुति अर्पण कर रहा हूँ। वह हवि अब अग्नि, सूर्य या प्रजापति की हुई, वह अब

मेरी नहीं है।' यद्यपि इन तीनों शब्दों का अर्थ एक ही है, परन्तु इनसे उत्पन्न ध्वनि-कम्पनों के शरीर, मन तथा प्राण पर होनेवाले प्रभाव भिन्न हैं। अग्निहोत्र के ये मन्त्र सूर्य से आनेवाली प्रकाशरूपी किरणों का ध्वनिमय सार हैं। अग्निहोत्र मन्त्र के ठीक समय पर उच्चारण से वातावरण-शुद्धि होती है। इन मन्त्रों के अनुवाद से उस शुद्धिकारक शक्ति का प्रस्फुटन असम्भव है। इन मन्त्रों के उच्चारण से वर्ण एवं ध्वनि के कम्पन वातावरण में फैलते हैं। स्पष्ट है कि मन्त्रों के अशुद्ध उच्चारण से अभीष्ट ध्वनि-कम्पन उत्पन्न नहीं हो पाते। परिणामतः मन्त्रों के लाभ से वक्ता वञ्चित रह जाते हैं।

वर्ण शब्द के दो अर्थ हैं—ध्वनि तथा रंग। कम्पनों से शक्ति निर्मित होती है तथा सृष्टि की उत्पत्ति कम्पनस्वरूप शक्ति से हुई है—ऐसा आज भौतिक वैज्ञानिक मानते हैं। जहाँ तक ध्वनि का प्रश्न है, ध्वनि-कम्पनों के अच्छे-बुरे परिणामों को वैज्ञानिक जानते हैं। उदाहरणार्थ—संगीत सुनकर गौएँ अधिक दूध देती हैं तथा पेड़-पौधों की वृद्धि की दर बढ़ जाती है, सैनिकों को किसी पुल पर चलते समय बेताल चलने को कहा जाता है; क्योंकि तालबद्ध संचलन से उत्पन्न कम्पनों से पुल टूट जाने के उदाहरण हैं। सुमधुर नाद का शरीर तथा मन पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है। आजकल इन ध्वनि (पराश्रव्य) तरंगों का प्रयोग समुद्र की गहराई नापने, संवेदनशील शल्यक्रियाओं तथा कैन्सर के निदान तक के लिए किया जाने लगा है। अग्निहोत्र के मन्त्रों में ध्वनि-चिकित्सा (वाइब्रेशन थिरैपी) का गुण कैसे है, यह उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है।

वर्ण का एक अर्थ है रंग। रंग-चिकित्सा (क्रोमोपैथी) का आधुनिक चिकित्सा में अपना विशिष्ट स्थान है। अलग-अलग तीव्रता की तरंगों से भिन्न-भिन्न प्रभाव उत्पन्न होते हैं। आधुनिक विज्ञान प्रकाश को तरंग के रूप में मानता है। भिन्न-भिन्न रंगों के प्रकाश की भिन्न-भिन्न आवृत्तियाँ (फ्रीक्वैन्सीज़) होती हैं। प्रकाश के रंग का गाढ़ा या हल्का

होना, उस रंग के प्रकाश-तरंग की तीव्रता (इन्टेन्सिटी) पर निर्भर होता है। मन्त्र-शास्त्र के अनुसार, देवनागरी वर्णमाला श्वेत, लाल, पीले तथा नीले रंगों में विभाजित है। प्रत्येक रंग के अपने विशिष्ट गुण-प्रभाव हैं। अतः भिन्न-भिन्न रंगों के उपचार के लिए भिन्न-भिन्न रंगों के प्रकाश को प्रयुक्त किया जाता है। यथा—लाल रंग का प्रकाश ऊष्मा प्रदान करता है। अतः कुछ रक्त तथा चर्म-रोगों में यह अच्छा सिद्ध हुआ है। लाल रंग का प्रकाश मानसिक ऊर्जा देता है—जन्मजात उदासीनों को भी और परिवेश द्वारा सताए गए निराशावादियों को भी। नेत्र के ऑपरेशन के बाद आँख पर हरे रंग की पट्टी बाँधी जाती है। धातु-वैल्डिंग का काम करने वाले व्यक्ति वैल्डिंग क्रिया में उत्पन्न तीव्र प्रकाश से नेत्रों की सुरक्षा के लिए बैंगनी रंग के काँच का आवरण प्रयुक्त करते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक रंग का अपना विशेष महत्त्व है।

यज्ञ द्वारा वातावरण में अनुकूल एवं पोषक तत्त्व प्रसारित करते समय मन्त्रोच्चारण द्वारा आस-पास के वायुमण्डल में सूक्ष्म ध्वनि-कम्पन प्रसारित किये जाते हैं और आहुति दी जाती है। आहुति के ज्वलन से उत्पन्न ज्वाला के लाल-नीले-पीले रंगों से भी यज्ञ-मन्त्रों का अद्भुत सामंजस्य है और इस प्रकार इन मन्त्रों में रंग-चिकित्सा के गुण भी अन्तर्भूत हैं। यज्ञ के मन्त्रों का उच्चारण करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि मन्त्रों को न तो होठों-ही-होठों में बुदबुदाया जाता है और न ही उनकी गर्जना की जाती है। प्रत्येक मन्त्र के निश्चित स्वर (तीव्रता तथा आवृत्ति) के साथ ही उसका उच्चारण किया जाता है। मल्हार-राग से वर्षा का होना तथा दीपक-राग से दीपकों का जल जाना आदि उदाहरण इतिहास में उपलब्ध हैं। मन्त्र के साथ स्वर और लय का महत्त्व स्पष्ट है। इस दृष्टि से यज्ञ में मन्त्रोच्चारण के समय आजकल प्रयुक्त होनेवाला ध्वनि-विस्तारक (लाउड-स्पीकर), ध्वनि-तरंगों की तीव्रता को बदल देने के कारण, मन्त्र-ध्वनि की दृष्टि से, उपयुक्त नहीं है। यज्ञ में उच्चरित मन्त्र सद्भावना उत्पन्न करने वाले अक्षर-समूह (शब्द) हैं, उसी के अनुरूप

उनका उच्चारण होना चाहिए। इससे पर्यावरण (शब्द) प्रदूषण को दूर करने में सहायता मिलती है। नियमविरुद्ध मन्त्र के उच्चारण से, लाभ के स्थान पर, हानि की भी सम्भावना है।

(उ) भावना—

एक चिकित्सक, आवश्यकता होने पर, किसी रोगी के शरीर के किसी अंग को किसी शस्त्र से काटता है; एक डाकू किसी व्यक्ति के शरीर के किसी अंग को शस्त्र से काटता है। क्रियाएँ समान होते हुए भी, दोनों व्यक्तियों (चिकित्सक तथा डाकू) की भावनाओं में अन्तर होने से क्रिया-फल भिन्न-भिन्न होता है। यज्ञ में उच्च सात्विक भावना होना परमावश्यक है। यज्ञ में स्वार्थ नहीं, वरन् परमार्थ की भावना होनी चाहिए। अग्नि, सूर्य, प्रजापति, आदि को आहुति प्रदान करने के पश्चात "इदन्न मम" का उच्चारण किया जाता है। याज्ञिक की भावना कैसी होनी चाहिए? यह "इदन्न मम" के भाव में निहित है। याज्ञिक ने अपन धन-द्रव्य-श्रम लगाकर यज्ञ किया; इससे उसमें स्वार्थ-अहम् की भावना आ सकती है; 'यह मेरे लिए नहीं है या यह मेरा नहीं है' कहने के साथ स्वार्थ-अहम् की दुर्भावना समाप्त हो जाती है। वैदिक यज्ञ की इसी भावना को दुर्लक्ष्य करने का परिणाम तान्त्रिक यज्ञ तथा पशु-हिंसा-यज्ञ हुआ है। इस प्रकार का दुर्भावना-युक्त यज्ञ अभीष्ट की सिद्धि करने में असमर्थ रहता है। अथर्ववेद (१२/५/५६) में कहा है कि "जो मनुष्य वैदिक रीति के विरुद्ध चलकर अग्निहोत्र, वेदाध्ययन आदि छल से करना चाहता है, उससे उसकी इष्ट-सिद्धि नहीं होती।"

प्रकृति में होने वाले परिवर्तनों के साथ मानवीय शारीरिक क्रियाओं का सुर मिलाने के लिए प्रकाश व अंधकार के सन्धिकाल—प्रातः काल—सूर्योदय तथा सांयकाल—सूर्यास्त के समय, यज्ञ विशेष फलदायी होता है। अतः प्रातः—सायं यज्ञ करने का विधान है। इससे प्रदूषित पर्यावरण शुद्ध होता है।

३. प्राकृतिक चिकित्सा में यज्ञ का प्रयोग

प्राकृतिक चिकित्सा की आधारभूत मान्यता है कि शरीर की स्वाभाविक (प्राकृतिक) अवस्था स्वस्थ-अवस्था है। शरीर को स्वस्थ बनाए रखने के लिए मनुष्य को मन तथा कर्म से प्रकृति के साथ सुर मिलाए रखने (ट्यूनिंग) की आवश्यकता है। बाह्य कीटाणु आदि के कुप्रभाव से अपनी रक्षा करने की शरीर में पर्याप्त क्षमता है। मनुष्य के अयुक्त आहार-विहार के कारण जब शरीर के प्रतिरक्षी (ऐण्टिबॉडी) की क्रियाशीलता मन्द पड़ जाती है तब शरीर रुग्ण हो जाता है—गर्मी, ठण्ड या कीटाणु, आदि तों रोग के निमित्त कारण बन जाते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा में शरीर की प्राकृतिक क्रियाओं द्वारा इन प्रतिरक्षियों को सक्रिय किया जाता है। वायु (प्राणायाम), मिट्टी (गारा की पट्टी) तथा जल (जल-चिकित्सा) आदि को साधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। भयंकर रोगों में नीम-गिलोय आदि को शोधन (प्रायश्चित) के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। यज्ञ द्वारा उत्पन्न गैसें तथा वातावरण शरीर को प्राकृतिक अवस्था में लौटाने में बहुत सहायक होते हैं। भारत में यद्यपि यह एक सामान्य घटना है किन्तु विदेशों में, विशेषतः अमरीका में, इसको काय-चिकित्सा की एक पृथक् पद्धति मानकर एक अलग नाम 'होमा-थिरैपी' दे दिया गया है।

'कोश-शुद्धि' या 'काय-शुद्धि' के लिए योगसाधना के पूर्व किये जाने वाले यौगिक आसन प्राकृतिक चिकित्सा के अंग हैं। योग में षड्-या अष्ट-चक्रों का अपना महत्त्व है। यज्ञ से इन 'चक्रों' पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। अमरीका की 'सत्संग'[१०] नामक पत्रिका (१२, २, जून १९८४) में, इस विषय में, श्री एडवर्ड आइकबोएर तथा उनकी पत्नी -श्रीमती इन्ग्रिड आइकबोएर ने इण्डोनेशिया में स्थित सोलो (या सुराकार्ता) में अपने पर्यटन का विवरण निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया है।

सोलो नगर के श्री सुयोनी हैनोंगडरसोनो नामक एक विद्वान्

दार्शनिक ने एक दिन व्यक्तियों के एक समूह को आमन्त्रित किया, जिसमें

एक ऐसा व्यक्ति भी सम्मिलित था जो सूक्ष्म ऊर्जाओं को विशेष प्रकार से अनुभव कर सकता था। 'व्याहृति होम' नामक एक रोगनिवारक अग्नि है, जिसको सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय के अतिरिक्त किसी भी समय प्रज्वलित करने से प्रकृति के साथ एकरूपता निर्मित की जा सकती है। उसने यह 'होम' ताँबे के बने पिरेमिड में किया। अग्नि शान्त होने पर उस व्यक्ति ने कहा कि "मैंने ताँबे के पिरेमिड के ऊपर हरे प्रकाश को देखा और पार्थिव ऊर्जा को मूल चक्रों को प्रभावित करते हुए तथा कुण्डलिनी को जागरित करते हुए देखा।"

सांयकाल जब सूर्यास्त-अग्निहोत्र किया गया तो उसी व्यक्ति का अनुभव था कि "मन्त्रोच्चारण के पश्चात्, मैंने पिरेमिड के ऊपर पीत-सुनहरे प्रकाश को देखा और ऊर्जाएँ किसी एक चक्र-विशेष को प्रभावित नहीं कर रही थीं, प्रत्युत वे समग्र रूप में अत्यन्त सकारात्मक (पोज़िटिव) थीं।"

यौगिक क्रियाओं के लिए अग्निहोत्र अत्यावश्यक है, क्योंकि इससे वायुमण्डल शुद्ध होता है और 'प्राण' (जीवन-ऊर्जा) वायुमण्डल पर निर्भर है। 'प्राण' और 'मन' एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यह सभी का एक सामान्य अनुभव है कि अग्निहोत्र का वायुमण्डल ध्यान लगाते समय मन को एकाग्र करने में सहायक होता है।

शिकागो (इलिनॉय) में मई १९८५ में हुई 'सेवन कण्टिनैण्ट डाउसर्स ग्रुप स्प्रिंग कन्वेन्शन' ('*यूएस सत्संग*', १३, ५, जुलाई, १९८५) में बोलते हुए श्री जेरी होजिज़ ने कहा कि "मैंने यज्ञ को जब पहली बार किया तो आश्चर्यजनक परिणाम प्राप्त हुए। मन को इतनी शान्ति प्रतीत हुई कि तीन मिनट में ही मन एकाग्र होकर ध्यान लग गया, जबकि इस अवस्था में पहुँचने में साधारणतः एक घंटा लग जाता है।" स्पष्ट है कि यज्ञ मन तथा शरीर के तनावों को दूर करता है, जिससे अनेक रोग दूर होते हैं। पाश्चात्य की अपेक्षा भारतीय विचारधारा से प्रभावित प्राकृतिक

चिकित्सालयों में आज जल, मिट्टी, यौगिक आसनों के साथ अग्निहोत्र का भी प्रयोग हो रहा है।

अमरीका के एक मनोवैज्ञानिक श्री बैरी राथनेर ने पूना विश्वविद्यालय में 'अग्निहोत्र का मानसिक तनाव पर प्रभाव' नामक विषय पर शोध किया है। उन्होंने बताया है कि इस घरेलू चिकित्सा से बच्चों का मिरगी रोग जाता रहता है और मानसिक रूप से अविकसित बच्चों की बुद्धि विकसित हो जाती है। श्री राथनेर का कथन है कि वैदिक यज्ञ से पृथ्वी और अन्य ग्रहों की गति द्वारा उठनेवाली प्राकृतिक तरंगों का वातावरण पर विशेष प्रभाव पड़ता है, ये तरंगें मनुष्य के शरीर और मस्तिष्क पर विशेष प्रभाव डालती हैं।[६]

जीव-विज्ञान के कुछ सूक्ष्मदर्शियों का दावा है कि यज्ञ के धूम के शरीर के भीतर जाने से उसके सूक्ष्म तन्तुओं पर प्रभाव पड़ता है। यज्ञ के धूम के सामने रहने से रक्त में निहित 'सुगर प्लेटों' के विस्तार में कमी हो जाती है।

४. यज्ञ का रोगाणु-गणनांक पर प्रभाव[१]

वायु में सर्वत्र प्रत्येक समय असंख्य रोगाणु विद्यमान रहते हैं, अपने अनुकूल परिस्थितियों में इन रोगाणुओं की वृद्धि होती है, जबकि विपरीत परिस्थितियों में इनकी मात्रा में ह्रास उत्पन्न होता है। यज्ञ की दृष्टि से इनका अध्ययन-अन्वेषण यद्यपि कई अन्वेषकों ने किया है तथापि यहाँ पर मात्र एक अन्वेषक के शोध-कार्य का संक्षेप में वर्णन किया जाता है।

बम्बई के जीवाणु-वैज्ञानिक श्री ए०जी० मोण्डकर ने, यज्ञ के वायुमण्डल का जीवाणु संख्या पर क्या प्रभाव होता है, इसके लिए सन् १९८२ में कुछ वैज्ञानिक प्रयोग किये। एक प्रयोग में, समान विस्तार के दो कमरों का चयन किया गया। प्रयोग के आधा घण्टा पूर्व, आधुनिक

वैज्ञानिक विधियों द्वारा, इनकी रोगाणु-संख्या ज्ञात की गई। इनमें से

प्रथम कमरे में, ठीक सूर्यास्त के समय अग्निहोत्र किया गया। दूसरे कमरे में, उन्हीं द्रव्यों से केवल अग्नि प्रज्वलित की गई किन्तु यज्ञ नहीं किया गया। इस प्रकार इन्हें दो-दो घंटों का उद्भासन (ऐक्सपोज़र) दिया गया। दोनों कमरों की रोगाणु-संख्या पुनः ज्ञात की गई। मोण्डकर ने देखा कि, दूसरे कमरे की तुलना में, प्रथम कमरे की रोगाणु-संख्या में ९१·४ प्रतिशत कमी आ गई है। इससे उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि यज्ञ मात्र धूमन (फ़्युमिगेशन) की क्रिया नहीं है—इससे अधिक, कुछ और भी है, जो शोध का विषय है।

डॉ० मोण्डकर ने एक दूसरे प्रयोग में किसी रोगाणु-विशेष पर अग्निहोत्र के प्रभाव का अध्ययन किया। इसके लिए उन्होंने *स्टैफ़िलोकोकाई पायोजीन्स* नामक रोगाणु को छाँटा। इस रोगाणु को ब्लड अगर की दो प्लेटों में प्रविष्ट किया। इनमें से प्रथम प्लेट को यज्ञ के वायुमण्डल में उद्भासित करके, बारह घंटे तक उसे वहीं रखकर छोड़ दिया। परीक्षण के पश्चात् उन्होंने देखा कि इस प्लेट के लगभग सभी जीवाणु निष्क्रिय हो चुके हैं—जीवाणु मर चुके हैं। इसकी पुष्टि करने के लिए उन्होंने प्रत्येक प्लेट के जीवाणुओं का, अलग-अलग, एक मिलीलीटर सामान्य (नॉर्मल) सोडियम क्लोराइड विलयन में पायस (इमल्शन) बनाया। उनकी आविलता (टर्बिडिटी) की तुलना करके, उनकी सान्द्रता समान कर ली गई। इन दोनों विलयनों को समान जाति के एक-एक चूहे (श्वेत मूषक) की जंघाओं में टीके (इनऑकुलेशन) द्वारा पहुँचाकर, उनका पाँच दिनों तक निरीक्षण किया गया। अग्निहोत्र से प्रभावित प्रथम प्लेट से प्राप्त विलयन से चूहे के शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, जबकि दूसरेवाले विलयन से चूहे को एक विशेष प्रकार का फोड़ा बन गया। इससे उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि यज्ञ के वायुमण्डल का रोगाणुओं को नष्ट करने में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

एक अन्य प्रयोग में डॉ० मोण्डकर ने हवनकुण्ड से विभिन्न दूरियों

पर (एक सौ साठ सेन्टीमीटर से दो सौ पच्चीस सेन्टीमीटर के परास में)

रखे नमूनों पर यज्ञ के प्रभावों का अध्ययन किया। इसके लिए, उन्होंने *स्टेफ ऐल्बुस, बी सब्टिलिस ऐण्टेरोकोकाई, ई० कोलाई, स्टेफ़ पायो* तथा *डी पेनुमोनिई* नामक रोगाणुओं का चयन किया। उन्होंने देखा कि यज्ञ के वायुमण्डल में रोगाणुओं की संख्या घटती है तथा उनकी हवनकुण्ड से दूरी बढ़ने के साथ, हवन का रोगाणु शामक प्रभाव कम होता जाता है ('यूऐस सत्संग', १०, ९, सितम्बर, १९८२)।

इसी प्रकार का एक स्वतन्त्र प्रयोग अन्वेषक डॉ० बी०आर० गुप्ता, ऐसोसिएट प्रोफ़ेसर, रोगाणु-विज्ञान विभाग, चन्द्रशेखर आज़ाद कृषि विश्वविद्यालय, कानपुर (उ०प्र०) ने किया। उन्होंने देखा कि जिस आवासीय कॉलोनी में यज्ञ नहीं होता है उसमें वायुमण्डलीय रोगाणु-गणनांक एक सौ तेईस था, जबकि जिस कॉलोनी में नियमित अग्निहोत्र होता रहता था उसका रोगाणु-गणनांक मात्र पच्चीस था।[५] स्पष्ट है कि यज्ञ से वायुमण्डलीय रोगाणु निष्क्रिय हो जाते हैं। इस प्रकार, वायु-प्रदूषण को दूर करने के लिए यज्ञ वज्र-रामबाण है। अथर्ववेद (१०/५/४३) ने इसीलिए कहा है कि "प्रजापालक राजा उपद्रवियों को वश में रखे और उनको ऐसा नष्ट कर दे कि जैसे हवन में उत्तम सामग्री और काष्ठ आदि से रोगकारक दुर्गंध (रोगाणु) आदि नष्ट हो जाते हैं।"

एक प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक डॉ० बी० वेंकटराव ने अपनी 'पंचतन्त्र' नामक पुस्तक में लिखा है कि "आधुनिक सभ्यता ने मनुष्य को प्रकृति से दूर कर दिया है। इसीलिए आधुनिक मनुष्य का प्राकृतिक विधियों से विश्वास उठ गया है। आज हम यह भी भूल गए हैं कि हमें ताजी वायु तथा सूर्य-प्रकाश में जीना है।"

इसी प्रकार, प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक डॉ० हेनरी लिण्डलहर ने अपनी ख्यातिप्राप्त 'फ़िलॉसफ़ी ऐण्ड प्रैक्टिस ऑफ नेचर क्योर' नामक पुस्तक में 'स्वास्थ्य' तथा 'रोग' की व्याख्या करते हुए लिखा है कि "भौतिक, मानसिक तथा नैतिकता के स्तरों पर, मानव का निर्माण करने

वाले तत्त्वों तथा शक्तियों के सामान्य तथा सामंजस्यपूर्ण कम्पन का नाम स्वास्थ्य है। इसके विपरीत, एक या अधिक स्तर पर, रोग है। दुर्घटना आदि के अतिरिक्त, प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन ही रोग का मुख्य कारण है।" डॉ० लिण्डलहर ने रोग को ठीक करने की जो रूपरेखा प्रस्तुत की है उसका सार है कि मनुष्य प्रकृति के अनुकूल चले।[५]

यज्ञ करते समय शरीर के रन्ध्र खुल जाते हैं और अग्निहोत्र से उठनेवाली वाष्प चर्म में प्रविष्ट होकर, शरीर को आरोग्यता प्रदान करती है।

यज्ञ-राख को शरीर पर मलने से त्वचा कोमल तथा चमकीली बनती है। यज्ञ-चिकित्सा में प्रविष्ट होने पर, रोगी, किसी चिकित्सक आदि पर आश्रित न होकर, अपनी चिकित्सा स्वयं करने लगता है।

इस प्रकार, प्राकृतिक चिकित्सा में यज्ञ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यज्ञ के विना प्राकृतिक चिकित्सा अधूरी है। यही कारण है कि होमा-थिरैपी आज प्राकृतिक चिकित्सा की एक अलग-स्वतन्त्र चिकित्सा, पद्धति बन गई है।

५. औषधि-विज्ञान में यज्ञ का प्रयोग

पाश्चात्य औषधि-विज्ञान ने गत अर्द्ध-शताब्दि में जो उल्लेखनीय उन्नति व विकास किया है, उससे भ्रमित होकर कुछ तथाकथित बुद्धिवादी यह गर्वोक्ति करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं कि "आधुनिक औषधि-विज्ञान के बलबूते पर सब कुछ करना सम्भव है।" किन्तु, वे भूल जाते हैं कि आज का विज्ञान अनेक प्रश्नों के उत्तर देने में असमर्थ है—उसी के द्वारा उत्पन्न की गई अनेकानेक समस्याओं का हल प्रस्तुत करने में आधुनिक भौतिक विज्ञान मूक है या पंगु है। उदाहरणार्थ—संश्लेषित (ऐलोपैथिक) औषधियों के पार्श्व-प्रभाव (साइड इफ़ेक्ट्स) व पश्च-प्रभाव (आफ़्टर इफ़ेक्ट्स), परमावश्यक औषधियों के प्रति मानव शरीर का प्रतिरोध, औषधियों के अस्वाभाविक प्रभाव तथा आधुनिक सभ्यता के द्वारा प्रदत्त

पर्यावरण-प्रदूषण का अभिशाप आदि हैं। इस प्रकार की समस्याओं का समाधान ढूँढने के लिए पाश्चात्य जगत् के औषधि-विशेषज्ञों ने 'मेडिसिना आल्टरनेटिया' (औषधियों का विकल्प) नाम से गोष्ठियाँ आरम्भ कर दी हैं। सन्तोष का विषय है कि इन गोष्ठियों में कुछ भारतीय तथा विदेशी महानुभावों ने यज्ञ के सर्वांगी उपयोगी गुण की ओर संकेत करके, उसे व्यवहार में अपनाने पर बल दिया है। पर्यावरण-प्रदूषण आदि की समस्या के समाधान के लिए जिनेवा में जून १९८४ में संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्त्वावधान में एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकारी, विश्व के अनेक लब्धप्रतिष्ठ पत्रकार, अध्यापक, संस्थानों के निदेशक, समन्वयकारी तथा कुछ चयनित विशेषज्ञों ने भाग लिया था। इस संगोष्ठी की 'रिपोर्ट' एक पुस्तकाकार में प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक का नाम है 'होमा-थिरैपी', इसके लेखक हैं यज्ञ के वैश्विक प्रचारक, भारत के सन्त श्री वसन्त वी परांजपे; संयुक्त राष्ट संघ के अन्तरराष्ट्रीय युवा वर्ष, १९८५ की जेनेवा बैठक के उपलक्ष्य में 'ट्री प्रोजेक्ट' के अन्तर्गत यह प्रकाशित हुई है।

मुम्बई के जीवाणु-विशेषज्ञ डॉ० ए०जी० मोण्डकर ने यज्ञ के पश्चात् यज्ञ-कुण्ड में बची ठण्डी राख के रोगहर के रूप में प्रभाव का अध्ययन किया। खरगोशों में हुई छूत की एक बीमारी—खुजली को ठीक करने के लिए प्रायः बेन्ज़ाइल बेन्ज़ोएट या सैलिसिलिक अम्ल को प्रयुक्त किया जाता है, जिससे खरगोश की खुजली ठीक होने में छः से आठ दिन तक लगते हैं। डॉ० मोण्डकर ने खुजली के रोगी खरगोशों पर यज्ञ की राख का गोघृत में बना मल्हम लगाने पर देखा कि वे केवल तीन दिन में ही ठीक हो गए ('*यूएस सत्संग*', ९, १२०, १९८२)। इससे स्पष्ट है कि यज्ञ न केवल वायुमण्डलीय जीवाणुओं को नष्ट करता और श्वास द्वारा रक्त में मिलकर शरीर को निरोगी बनाता है, प्रत्युत इसकी राख में भी प्रतिरोधी (ऐण्टिसेप्टिक) गुण होने से रोगाणुनाशक गुण है, जिससे जख्म आदि को ठीक किया जा सकता है।

६. मन के व्यापारों पर यज्ञ का प्रभाव

भौतिकता-प्रधान आधुनिक जीवन ने मानव मस्तिष्क में अनेक प्रकार की तनाव-ग्रन्थियाँ उत्पन्न कर दी हैं, जिनसे जीवन का महत्त्व ही समाप्त हो गया है। इस प्रकार के मानसिक तनावों पर यज्ञ का सकारात्मक प्रभाव खोजने के लिए दिल्ली के 'डिफ़ेंस इन्स्टीट्यूट ऑफ़ फ़िज़िओलोजी ऐण्ड ऐलाइड सांइसिज़' के वैज्ञानिक-ई, डॉ० डब्लू० सेल्वामूर्ति ने एक साहसिक प्रयोग किया था। इसको एक शोध-पत्र के रूप में भारतीय प्रोद्यौगिकी संस्थान (आई आई टी), दिल्ली में ४ नवम्बर, १९८९ को आयोजित हुए 'योग सम्मेलन' में प्रस्तुत किया गया था। इस शोध-पत्र का शीर्षक था 'मन्त्रों का मन और शरीर के स्वास्थ्य पर प्रभाव'। डॉ० सेल्वामूर्ति ने इस प्रयोग में ईसीजी, ईईजी, वर्णक्रम-विश्लेषण तथा आधुनिक कम्प्यूटर आदि सुसंस्कृत उपकरणों एवं तकनीकों का प्रयोग किया था। आठ व्यक्तियों पर प्रयोग के पश्चात् उनका अवलोकन था कि यज्ञ के दौरान हृदय-स्पन्दन कम होने की प्रवृत्ति होती है, त्वचा का ताप एक डिग्री सेल्सियस बढ़ जाता है, इत्यादि। इससे उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि यज्ञ के वायुमण्डल से मस्तिष्क की व्यग्रता-आकुलता कम होती है, मन का तनाव कम होता है तथा मन-मस्तिष्क अपने स्वाभाविक (तनावमुक्त) रूप में कार्य करने के लिए मुक्त हो जाता है।

७. यज्ञ-राख का रोगहर प्रभाव

डी आई पी ए ऐस, नई दिल्ली के विंग कमाण्डर डॉ० वी०के० राव (क्लासिफ़ाइड स्पेसेलिस्ट, पैथोलोजी) तथा कर्नल आर०ऐस० तिवारी (सीनियर ऐडवाइज़र, मेडिसिन) ने यज्ञ-राख के प्रतिपूति गुण तथा ज़ख्म को ठीक करने के गुण को श्वेत चूहों (ऐल्बिनो माउस) पर प्रयोग करके अन्वेषण किया। उनका निष्कर्ष है कि यज्ञ-राख में प्रतिपूति

(ऐण्टिसेप्टिक) गुण है। जो *स्यूडोमोनास, प्रोटियस, ई० कोलाई, क्लेविसिला* तथा *स्टैफिलोकोकस* आदि रोगाणु सामान्यतः संक्रमण (इन्फ़ेक्शन) में विद्यमान रहते हैं, उन पर यह संहारक प्रभाव करता है। साथ ही, यज्ञ-राख से जो ज़ख्म भरता है उसका निशान बहुत छोटा बनता है ('यूऐस सत्संग', १५/३, जून, १९८७)।

८. होम-चिकित्सा[५]

पश्चिमी जर्मनी के मोनिका जेह्ले नामक एक औषधि-रसायनज्ञ ने, प्रयोगों के आधार पर, सिद्ध किया है कि अनेक रोगों को यज्ञ तथा यज्ञ-राख द्वारा ठीक किया जा सकता है। उसने इस चिकित्सा-पद्धति को होम-चिकित्सा (होमा-थिरैपी) नाम दिया है। उसके द्वारा किए गए अन्वेषण 'यूऐस सत्संग' (११/७) नामक मासिक पत्रिका में प्रकाशित हुए हैं, जिनका फरवरी, १९८५ (१२/१८—१९) में पुनर्मुद्रण हुआ है। उनके निष्कर्ष का सारांश निम्नवत् है :

रोग का नाम	प्रयोग/प्रेक्षण
फ्रण्टल साइनुसिटिस :	नियमित यज्ञ से शिरदर्द समाप्त, तीन-चार दिन में पस (मवाद) ढीला हो गया।
स्किन फंगस :	यज्ञ-राख को प्रति दिन कई बार लगाने से पूर्णतः रोगमुक्त।
नॉन-हीलिंग वूण्ड :	यज्ञ-राख को लगाने से, तीन दिन में रोग पूर्णतः समाप्त।
व्हिट्लो :	चर्म पर यज्ञ-राख लगाने से, तीन चार दिन में पूरा आराम हो गया, रोगी को कोई कष्ट नहीं हुआ।
अति मासिकधर्म-स्राव :	यज्ञ-राख को मधु में मिलाकर प्रति दिन दो-तीन बार खाने से, आठ सप्ताह में स्राव अपनी पूर्व सामान्य स्थिति में आ गया, शिर-दर्द तथा अति-पीड़ा लुप्त हो गई।
वृक्क-पीड़ा :	एक चुटकी-भर यज्ञ-राख को प्रति दिन दो-तीन बार खाने से, एक सप्ताह में पीड़ा जाती रही।
गैस्ट्रिटिस :	यज्ञ-राख को तीन बार खाने से, विजातीय द्रव्य कफ़ के रूप में निकल जाने पर, रोगमुक्त।

रोग का नाम		प्रयोग/प्रेक्षण
मिग्रेन	:	एक चुटकी भर यज्ञ-राख को प्रति दिन दो बार खाने से, दो झटकों के बीच की अवधि निरन्तर बढ़ती गई, स्थायी थकान दूर हो गई।
टॉन्सिलिटीज़ (गदूद फूलना)	:	चायवाली आधी चम्मच यज्ञ-राख को प्रति दिन दो बार खाने से, विना ज्वर हुए, गदूद अपनी समान्य स्थिति में आ गए।

उपर्युक्त अन्वेषण मोनिका जेह्ले, औषध-रसायनज्ञ, कोलिन्स्ट्रासे १३, ७७६० रोडोल्फ़ज़ेल्ल/बोण्डेन्सी, वेस्ट जर्मनी के अनुभवों पर आधृत हैं। विश्व के विभिन्न देशों के विभिन्न व्यवसायों में रत व्यक्तियों ने दैनिक यज्ञ के अद्‌भुत चमत्कारों का अनुभव किया है। अधोलिखित शब्दों में, इनका केवल उल्लेख करना, प्रस्तुत विषय के विस्तार को सीमित करने के लिए, पर्याप्त है।

यज्ञ-राख का जख़्म भरने का गुण निम्नांकित व्यक्तियों ने अनुभव किया—

ग्लैडीज़ मैडिना	:	चिली, दक्षिण अमरीका ('यू ऐस सत्संग', १२/२, फ़रवरी, १९८५)।
ऐल्सबीटा गेरलेका	:	ग्डान्स्क, पोलैण्ड ('यूऐस सत्संग', १३/१०, अक्तूबर, १९८५)।
थेल्मा बिण्टानो	:	क्विल्प्यू, चिली ('यूऐस सत्संग', १४/२४, मई, १९८७)।
रोनी	:	('भारतीय सत्संग', १/१, १९८०)।
जान टेलर जैक्सन	:	यूऐसए ('भारतीय सत्संग', १/१, १९८०)।
इनग्रिड होवार्ड	:	कनाडा ('भारतीय सत्संग, ३, १९८०)।
क्रिस्टियाना ओजरोस्का	:	वार्सा, पोलैण्ड ('यूऐस सत्संग', १२/१६, जनवरी, १९८५)।

खुजली (स्केबीज़), धोबीखाज, त्वक्-फफूंद, चर्म पर ददौड़ा

(रैशिज़) तथा मस्सों (वार्ट्स) से मुक्ति के लिए यज्ञ तथा उसकी राख

का निम्नलिखित महानुभावों ने सफल प्रयोग किया[5] :

इनग्रिड होवार्ड : कनाडा ('भारतीय सत्संग', १/३, १९८०)।
क्रिस्टियाना ओज़रोस्का : वार्सा, पोलैण्ड ('भारतीय सत्संग', ५/८, १९८४)।
ग्लैडीज़ मैडिना : चौकीगुआस वैली, चिली ('यूऐस सत्संग', १२/१८, फरवरी, १९८५)।
डॉ० पुष्पा जोशी : लुणावला, भारत ('यूऐस सत्संग', १२, १९८५)।
लिसा पॉवर्स : यूऐसए ('यूऐस सत्संग', ९, जून, १९८१)।

काली खाँसी तथा दमा आदि श्वास-रोगों से, यज्ञ द्वारा, अधोलिखित व्यक्तियों ने छुटकारा पाया :

रॉबर्ट बोगोटा : कोलम्बिया, यूऐसए ('यूऐस सत्संग', १०, मई, १९८२)।
श्रीमती आर० डी० वार्सा, जे० डब्लू० वार्सा तथा ऐस० बी० वार्सा : ('यूऐस सत्संग', १२, जनवरी, १९८५)।
बी० पी० जिन्दल : अम्बाला कैण्ट (व्यक्तिगत प्रेषण)।
एस० चौधरी : नई दिल्ली, भारत (व्यक्तिगत प्रेषण, अक्तूबर, १९८६)।
ऐल्सबीटा गेरलेका : ('यूऐस सत्संग', १३/१०, अक्तूबर, १९८५)।

फ़ॉन सॉयर (यूऐसए) ने १९८५ ई० में सूचित किया कि उसके अति उत्पाती बच्चों के क्रिया-कलापों को यज्ञ के वायुमण्डल ने संयमित करने का अद्‌भुत कार्य किया।[5]

जर्मनी में वैज्ञानिकों ने गायों पर कुछ प्रयोग किये थे। यज्ञ-राख का मल्हम और क्रीम लगाने से परिसर्प (हर्पीज़) का प्रकोप रुक गया था। एक गाय के टखने में पर्याप्त दिनों से सूजन और दर्द की शिकायत चल रही थी। होम-चिकित्सा से गाय तीन दिनों में सीधी खड़ी हो गई

और एक सप्ताह में बिलकुल स्वस्थ हो गई। थन का सूजन भी यज्ञ-मल्हम से ठीक हुआ।[११]

भारत तथा आयरलैण्ड में यज्ञ के द्वारा चूहों के प्रकोप की समस्या हल हुई थी। पशुओं के पिस्सू तथा किलनी भी इसके प्रयोग से छूट जाते हैं।[११]

दस्त की शिकायत में, जर्मनी में, केवल एक ही दिन गाय के आहार में यज्ञ-राख मिलाने से वह पूरा दूध देने लगी।

गौशाला में यज्ञ करने से गायें बहुत प्रसन्न होती हैं। एक महीने तक इस प्रयोग को चलाने से दूध और मलाई दोनों की मात्रा में वृद्धि होती हुई पाई गई है।

'नवनीत' (बम्बई) के विज्ञान-वार्ता स्तम्भ में 'अन्वेषी' द्वारा संकलित अग्निहोत्र विश्वविद्यालय, अमरीका द्वारा यज्ञ के परीक्षणों का निष्कर्ष देते हुए लिखा है कि यज्ञ के धुएँ से विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने अमरीका की फसलों को हानि पहुँचानेवाले 'आलूवीनी' नामक कीट को समूल नष्ट करने में सफलता प्राप्त की है। इन वैज्ञानिकों के दावे के अनुसार यज्ञ धुआँ आठ किलोमीटर तक चक्कर लगाता है और वहाँ की वायु का प्रदूषण समाप्त होकर उस क्षेत्र की फसलों का स्वस्थ विकास होता है। यज्ञ के द्वारा फसलों को रोगों से बचाने तथा फसल को चारगुनी करने में अमरीका के कुछ किसानों ने सफलता प्राप्त की है।

मानसिक दृष्टि से अविकसित बालकों पर डॉ० पचेगाँवकर एवं डॉ० बैरी राथनेर ने महाराष्ट्र राज्यान्तर्गत बसे अम्बेजोगाई नामक नगर में यज्ञ का प्रयोग करने पर उत्साहवर्द्धक परिणाम प्राप्त किये। यज्ञ से बच्चों की अत्यधिक भूख भी सामान्य हो गई।

ऐल्सबीटा गेरलेका (पोलैण्ड) ने सोरियासिस (ऐसा चर्म-रोग जिसमें चर्म पर लाल चिकोते पड़ जाते हैं) रोग से यज्ञ द्वारा मुक्ति पाई ('यूऐस सत्संग', १३/१०, अक्तूबर, १९८५)।

पश्चिमी जर्मनी के अनुसन्धानकर्त्ताओं का कहना है कि यज्ञ के धुएँ

(गैस) तथा सामग्री से जुकाम, शिरोपीड़ा, त्वचा के छाले, पुराना ज्वर,

अतिसार, दाद, टॉन्सिल तथा जोड़ों की पीड़ा आदि अनेक रोग ठीक हो जाते हैं।

अंग्रेजी की 'मिरर' नामक मासिक पत्रिका के जुलाई, १९८३ अंक के पृष्ठ ७५ पर प्रकाशित हुआ है—"प्रकृति की प्रक्रियाओं पर भी अग्निहोत्र का प्रभाव पड़ता है तथा उन्हें शुद्ध रूप प्राप्त होता है।" इस दिशा में अभी वैज्ञानिक प्रयोग अपेक्षित हैं।[६]

यज्ञ के विषय में संसार में प्रसिद्ध कुछ व्यक्तियों की सम्मतियाँ इस प्रकार हैं :

"जलती हुई शक्कर के धुएँ में वायु शुद्ध करने की बड़ी शक्ति है। इससे विशूचिका, क्षय तथा चेचक आदि का विष शीघ्र ही दूर हो जाता है।"

—प्रोफ़ेसर ट्रिलबर्ट (फ्रांस)

"मुनक्का, किशमिश तथा छुवारे आदि सूखे फलों को हमने जलाकर देखा है। हमें ज्ञात हुआ है कि उनके धुएँ से मियादी ज्वर के कीटाणु आधे घंटे में और दूसरे रोगों के दो घंटों में मर जाते हैं।"

—डॉ० ऐम० ट्रेल्ट

"घी-चावल में केशर मिलाकर जलाने से रोग के कृमियों का नाश होता है।"

—डॉ० कर्नल किंग, सेक्रेटरी कमिश्नर (तमिलनाडु)

"यह ठीक है कि आर्यों द्वारा किये जानेवाले यज्ञ से बादल बनते थे और उनसे वर्षा हुआ करती थी।"

—'हिन्दुस्तान टाइम्स', ८ अगस्त, १९५२ में एक भारतीय वैज्ञानिक का कथन

प्लेग के टीके के आविष्कारक डॉ० हैफ़किन (फ्रांस) ने लिखा है कि "अग्नि में गोघृत का हवन रोगाणुओं का विनाशकारी होता है।"

९. दुर्व्यसन-निवारणार्थ यज्ञ का प्रयोग

प्रदूषण का एक भंयकर प्रकार है—"विचार-प्रदूषण।" इससे व्यक्ति के विचार इतने प्रदूषित हो जाते हैं कि वह अच्छे को अच्छा तथा बुरे को बुरा समझने में असमर्थ हो जाता है। वह नशीले पदार्थों के सेवन का आदी बन जाता है—व्यक्तिगत स्वास्थ्य, अर्थ-व्यवस्था, परिवार तथा समाज के लिए यह दुर्व्यसन हानिकारक ही नहीं, वरन् सर्वनाशकारी होते हुए भी व्यक्ति इसे छोड़ नहीं पाता है। व्यक्ति का स्वाभिमान तथा मनोबल, संकल्प-शक्ति आदि समाप्त हो जाते हैं। इससे जीवन का अर्थ ही समाप्त हो जाता है। पाश्चात्य जगत् में प्रयुक्त होनेवाली विधियाँ ऐसे व्यक्ति को सुधारने में अपने आप को असमर्थ पाती हैं। ऐसी भयावह स्थिति में प्राचीन मनीषियों द्वारा आविष्कृत यज्ञ ही 'डूबते को तिनके का सहारा' सिद्ध होता है। इस दिशा में भारतीय सेना में साइकियाट्री विभाग में सीनियर ऐडवाइज़र के पद पर सेवारत लैफ़्टीनेण्ट कर्नल जी०आर० गुलेचा द्वारा किए गए अनेक प्रयोगों में से मात्र दो का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है, जिससे यज्ञ का प्रभाव स्पष्ट होता है।

कलकत्ता में १९९७ में हुए 'इण्डियन साइकियाट्रिक सोसायटी' के उन्तालीसवें वार्षिक अधिवेशन में श्री गुलेचा ने अपना "अग्निहोत्रा ऐन यूज़फुल ऐडजंक्ट इन ट्रीटमैण्ट ऑफ़ ए रैज़िस्टैण्ट ऐण्ड डिमोटिवेटिड स्मैक ऐडिक्ट" नामक एक शोध-पत्र को पढ़ा था, जो बाद में 'इण्डियन जर्नल ऑफ़ साइकियाट्री' के १९८७ के २९(३) अंक में पृष्ठ २४७-२५२ पर प्रकाशित हुआ था। उस शोध-पत्र का केवल सारांश यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है :

स्मैक से मुक्ति—

भारतीय सेना के एक पच्चीस वर्षीय ऑफ़िसर का प्रयोग के लिए चयन किया गया था। यह व्यक्ति गत कई वर्षों से सुरा, कोकेन, कैन्नाबिस

तथा सिग्रेट आदि नशीले पदार्थों का सेवन करता आ रहा था। प्रयोग के समय वह प्रतिदिन तीन ग्राम हीरोइन (स्मैक) का आदी बना हुआ था। नशा छुड़ाने के लिए प्रयुक्त होने वाली अन्य विधियों को उस पर दो बार प्रयुक्त किया जा चुका था, किन्तु वे उसकी नशे की लत (दुर्व्यसन) न छुड़ा सकी थीं।[५]

उस दुर्व्यसनी की यज्ञ द्वारा चिकित्सा करने के लिए उसे यज्ञ के सम्मुख बैठने के लिए प्रेरित किया गया। अनिच्छापूर्वक अनमने मन से तीन दिन यज्ञ के सामने बैठने पर, यज्ञ के सामने बैठने की उसमें इच्छा जागरित हुई—किसी अन्य द्वारा यज्ञ में लाये जाने के स्थान पर वह स्वयं यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए आया। सातवें दिन तो उसकी अवस्था यह थी कि वह स्वयं रुचिपूर्वक आहुतियाँ डालने लगा।

उसके स्वभाव में परिवर्तन का एक दैनिक चार्ट बनाया गया था। चार सप्ताह के यज्ञ से उसमें स्मैक के लिए तलब समाप्त हो गई। आगामी पन्द्रह मास के नियमित यज्ञ के अभ्यास से वह सब प्रकार के नशों से घृणा करने लगा—नशों से मुक्त हो गया। सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय विद्यमान अंतरिक्ष किरणों तथा यज्ञ से उत्पन्न विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों के तुल्यकालन (सिंक्रोनाइज़ेशन) के कारण मन की शान्ति ही इसका रहस्य है। यद्यपि वर्तमान काल के वैज्ञानिक जगत् को यह अविश्वसनीय प्रतीत होता है, किन्तु आँकड़े तथ्य को प्रकट कर रहे हैं।

शराब से मुक्ति—

मनोवैज्ञानिक श्री गुलेचा का एक दूसरा प्रयोग शराब (सुरा) की आदत वाले व्यक्ति पर था। पाश्चात्य जगत् में यह धारणा है कि शराब के सेवन को कम तो किया जा सकता है, किन्तु इससे पूरी तरह मुक्त नहीं हुआ जा सकता। श्री गुलेचा का निम्नलिखित प्रयोग इस धारणा को निर्मूल सिद्ध करने में सक्षम है। श्री गुलेचा का यह प्रयोग "अग्निहोत्र—इन दि ट्रीट्मैण्ट ऑफ़ ऐल्कोहॉलिज़्म" नाम के शोध-लेख

के रूप में, जनवरी, १९८९ में कलकत्ता में हुए 'इण्डियन साइकियाट्रिक ऐसोसिएशन' के इकतालिसवें वार्षिक अधिवेशन में प्रस्तुत किया गया था। इस शोध का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है :

अट्ठारह मद्यपों पर यज्ञ का प्रयोग किया गया। कम्प्यूटरीकृत ईईजी का अध्ययन किया गया। दो सप्ताह के नियमित यज्ञ से उनमें शराब पीने की इच्छा समाप्त हो गई। यज्ञ करना छोड़ने पर कुछ सप्ताह तक उनकी अवस्था ठीक रही; किन्तु उसके पश्चात् उनमें शराब पीने की इच्छा पुनः जागरित हो गई। इस प्रकार, दो सप्ताह के यज्ञ के अभ्यास से उनको दुर्व्यसन से पूर्णतः मुक्ति नहीं मिली। अतः, शराब पीने के दुर्व्यसन से पूर्णतः मुक्ति पाने के लिए यज्ञ को नियमित रूप से प्रति दिन करना, शराब की आदत छुड़ाने में, एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

उपर्युक्त प्रयोग पर मनन करने से पता लगता है कि यज्ञ करने से मन की सद्वृत्तियाँ जागरित होती हैं, जो व्यक्ति को शराब, सुल्फ़ा, गाँजा, भाँग, अफीम, स्मैक तथा तम्बाकू आदि के सेवन से विमुख करती हैं। अतः, दुर्व्यसनों के निवारण में यज्ञ एक अमोघ अस्त्र है।[१२]

१०. बीजों के अंकुरण में यज्ञ का प्रयोग[५]

पुणे के ऐम०जे०पी० कृषि विश्वविद्यालय के डॉ० बी०जी० भुजबल ने यज्ञ के वायुमण्डल के अंगूरों (द्राक्ष) के बीजों तथा क़लमों (कटिंग्स) के अंकुरण पर प्रभाव से सम्बन्धित अनेक प्रयोग किये हैं। उन्होंने पाया है कि होर्मोनों का उपयोग, छाल छेदना (स्कैरिफ़िकेशन) तथा तह लगाना (स्टैटिफ़िकेशन) आदि सदृश आधुनिक तकनीकों का प्रयोग करने के बावजूद अंगूर की बेलों का अंकुरण या फुटाव बहुत कम होता है। इसके सौ बीजों में से केवल बीस बीज ही अंकुरित हो पाते हैं, और वे भी बहुत लम्बी कालावधि—तीन सौ दिन के बाद। इस

कमी को ध्यान में रखते हुए, अनब-ए-शाही, पंधरी शाही, कली शाही, कुछ संकरित (क्रॉस्ड) बीजों के साथ स्थानीय अंगूर की बेल का संकरण करने के लिए, स्थानीय थोम्पसन जाति को माता या पिता (पेरेन्ट) के रूप में प्रयुक्त करते हुए, लोकप्रिय प्रजातियों का प्रयोग के लिए चयन किया गया। सभी बीजों तथा क़लमों को यज्ञ के वायुमण्डल में कुछ समय के लिए रखा गया तथा यज्ञ-राख भी उन पर लगाई गई। कुछ बीजों तथा क़लमों को, विना किसी उपचार के, तुलना करने के लिए (कण्ट्रोल सैम्पिल), अलग रखा गया।

डॉ० भुजबल यह देखकर आश्चर्यचकित हुए कि बीज बोने के मात्र इक्कीस दिन पश्चात् ही कुछ बीज अंकुरित हो गए, जबकि अनुपचारित बीजों ने अंकुरण के लिए छः मास या इससे भी अधिक समय लिया। स्पष्ट है कि यज्ञ-वायुमण्डल ने बीजों को शीघ्र अंकुरित होने के लिए प्रेरित किया। क़लमों में अँखवे (जड़) फूटने की मात्रा सौ प्रति शत थी। फसलक्षति शून्य थी, फसल को कोई कीड़ा नहीं लगा, अंगूरों का रंग उत्तम अर्थात् सुनहरी-पीला था तथा टीऐसऐस चौबीस प्रति शत की प्रकृति (क्वालिटी) थी; जबकि अनुपचारित नमूनों में फसल-क्षति तीस प्रति शत थी तथा अंगूरों का रंग पीला-हरा था।

डॉ० भुजबल को यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि यज्ञ का वायुमण्डल अंगूरों से मुनक्का बनाने के काम में भी सहायता करता है। यज्ञ-वायुमण्डल में अंगूरों के गुच्छों की शुष्कीकरण की क्रिया मात्र इक्कीस दिन में पूरी हो गई और पैंतीस दिन में उनका स्वाद बहुत अच्छा बन गया ('भारतीय सत्संग', १/१०, मार्च, १९८१)।

पिपलग्राम के एक फ़ार्म पर हवन किये जाने पर बीज बयालिस दिन के स्थान पर बाईस दिन में उग आये थे।[६]

उपर्युक्त प्रयोगों से स्पष्ट है कि यज्ञ का वायुमण्डल तथा उसकी राख बीजों के अंकुरण में बहुत सहायक होते हैं।

११. भरपूर फसल के लिए यज्ञ का प्रयोग[५]

मनुष्य जाति प्रति वर्ष पौने चार सौ अरब टन खाद्य सामग्री खा जाती है। इसका बड़ा भाग वनस्पतियों से सीधा प्राप्त होता है। वायु तथा पृथ्वी से प्राप्त पदार्थों और सूर्य-प्रकाश की सहायता से वनस्पतियाँ भोजन तैयार करती हैं। शेष भोजन पशुओं से आता है, जो अन्तत: वनस्पतियाँ खाकर ही जीते हैं।

मानव-निर्मित प्रदूषण के अत्याचार का उत्तर प्रकृति अपने भीषण प्रकोपों से देती है। पृथ्वी, जल, वायु तथा सूर्य-प्रकाश से पोषक तत्त्व ग्रहण करके वनस्पतियाँ हमारा खाद्य निर्मित करती हैं। परन्तु, प्रदूषण के कारण उपर्युक्त चारों पदार्थ सत्त्वहीन हो चुके हैं। आज वनस्पतियाँ इनसे पोषक तत्त्व नहीं पा रही हैं। अत:, समस्या अधिक अन्नोत्पादन तक ही सीमित नहीं है, प्रत्युत यह भी महसूस किया जाने लगा है कि जो अन्नोत्पादन हो वह पोषक तत्त्वों से भरपूर, सत्त्वयुक्त तथा शुद्ध हो।

१२. यज्ञ का फसल पर प्रभाव[५]

चन्द्रशेखर आज़ाद कृषि विश्वविद्यालय, कानपुर (उ०प्र०) में आनुवंशिकी (जेनेटिक्स) विभाग में ऐसोसिएट प्रोफ़ेसर डॉ० रामाश्रय मिश्र ने यज्ञ-राख के वरुण प्रजाति की राई के बीजों पर प्रभाव का प्रयोगों द्वारा गहन अध्ययन किया है। बोने के पूर्व राई के बीजों को गाय के गोबर, गो-मूत्र तथा अग्निहोत्र-राख से चौबीस घंटे तक उपचारित किया गया। समान मात्रा के बीजों को, तुलना करने के लिए, अनुपचारित रखा गया।

पूरे प्रयोग को चार भागों में विभाजित किया गया था। (अ) उपचारित बीज तथा फसल पर प्रत्येक पन्द्रह दिन पश्चात् यज्ञ-राख का छिड़काव (शुष्क राख बुरकना)। (आ) उपचारित बीज तथा फसल पर यज्ञ-राख को न छिड़कना। (इ) अनुपचारित बीज तथा फसल पर

यज्ञ-राख का छिड़काव, (ई) अनुपचारित बीज तथा फसल पर यज्ञ-राख को न छिड़कना। प्रयोग को सामान्यतः (ऐट रैण्डम) छह खेतों में छह बार किया गया था।

डॉ० मिश्र ने देखा कि उपचारित बीज तथा यज्ञ-राख के छिड़काव वाले खेत में फसल की सर्वाधिक वृद्धि—तीस प्रति शत वृद्धि हुई ('वैदिक संशोधन मण्डल', पुणे की १९८२ की पत्रिका में श्री ऐम०ऐस० पारखी ने 'वैदिक सोल्युशन फ़ॉर प्रेजेण्ट डे प्रोब्लम्स' नामक शोध-पत्र में ऐसा उल्लेख किया है)।

डॉ० मिश्र ने बीजों के अंकुरण, प्रति पौधा फसल तथा कीड़ा-नियन्त्रण आदि पर अनेक प्रयोग किये। गेहूँ-उत्पादन में उनका अनुभव है कि, परम्परागत विधियों की तुलना में, अग्निहोत्र-कृषि से फसल अधिक उत्पन्न होती है।

यह अन्वेषण चन्द्रशेखर आज़ाद कृषि तथा प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के 'स्टुडेण्ट इंस्ट्रक्शनल फ़ार्म' पर १९८५—८६ वर्ष में सम्पादित किया गया था। इस प्रयोग में प्राप्त परिणाम निम्नलिखित सारणी में अंकित हैं :

प्रयोग में प्राप्त प्रेक्षण

कृषि का प्रकार	प्रति शत अंकुरण	फसल पकने में लगे दिन	पौधे की ऊँचाई सेन्टीमीटर में	प्रति पौधा ऊपरी जड़ (टिलर) की संख्या	प्रति पौधा उत्पादन, ग्राम में
यज्ञ-कृषि	९५	१३२	६५.७५	६	७.४०
परम्परागत कृषि	८०	१३५	५१.६७	५	६.३८
नियन्त्रक	८०	१२५	६१.९०	४	५.४७

उपर्युक्त सारणीबद्ध परिणामों से स्पष्ट है कि, परम्परागत विधि से कृषि करने की तुलना में यज्ञ कृषि से बीजों का अंकुरण अच्छा होता है, अधिक जड़ें (पौधे) बनती हैं, पौधे की ऊँचाई अधिक होती है तथा फसल (उत्पादन) की मात्रा में वृद्धि होती है ('यूऐस सत्संग', १५/४-५,, जुलाई, १९८७)।

१३. फसल के परिरक्षण में यज्ञ का प्रयोग[५]

यज्ञ-राख फसल तथा अनाज के परिरक्षण के लिए सर्वसुलभ तथा सस्ता पदार्थ है, जो अनाज में किसी प्रकार की दुर्गन्ध, आदि उत्पन्न नहीं करता। एम०जे०पी० कृषि विश्वविद्यालय, पुणे के डॉ० बी०जी० भुजबल ने १९८०—८१ में अधोलिखित प्रयोग किया था :

निम्नांकित अनाजों में से प्रत्येक की एक किलोग्राम मात्रा का प्रयोग के लिए चयन किया गया—

गेहूँ-ज्वार ऐम ३५-१, पियर्ल मिलेट (मोटा अनाज), मूंग—स्थानीय *फ़ेज़िओलस ओरिअस* वैराइटी, चना तथा धान। इनके चार वर्ग किये गए—

(अ) नियन्त्रक।
(आ) एक प्रति शत यज्ञ-राख का अनुप्रयोग।
(इ) दस प्रति शत सान्द्रता वाले बीऐचसी-चूर्ण का एक प्रति शत अनुप्रयोग।
(ई) साधारण राख का अनुप्रयोग।

नब्बे दिन के परीक्षणों से ज्ञात हुआ कि उपर्युक्त वर्गों में से केवल यज्ञ-राख से उपचारित अनाज तथा एक प्रति शत बीऐचसी-उपचारित अनाज ही कीड़ा लगने से बचे रह सके। गुणात्मक दृष्टि से, बीऐचसी-उपचारित अनाज अपनी अग्राह्य दुर्गन्ध के कारण बाजार में ग्राहकों ने पसन्द नहीं किया। इससे सिद्ध होता है कि अग्निहोत्र-राख को अनाज के

परिरक्षण के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। ('यूएस सत्संग', ९/७, जून, १९८२)।

यूऐसए के बाल्टीमोर के श्री आर्लेना डैविस ने पाया कि जिप्सी मोथ संक्रमण से मैरीलैण्ड (यूऐसए) के सेसिल कण्ट्री नामक स्थान के नष्ट होते वन को जब अन्य कोई रासायनिक छिड़काव बचा न सका, तब यज्ञ-राख का छिड़काव उस कीट से वन-सुरक्षा करने में सफल हुआ। ('यूऐस सत्संग', ११/१२, नवम्बर, १९८३)।

कानपुर कृषि विश्वविद्यालय के डॉ० रामाश्रय मिश्र ने देखा है कि आल्टरनेरिया ब्लाइट नामक कीट के संक्रमण से राई की फसल की यज्ञ-राख द्वारा सुरक्षा होती है। यज्ञ-राख द्वारा कीटों से फसल की सुरक्षा होती है—ऐसे ही प्रेक्षण बाल्टीमोर (यूऐसए) तथा चिली (दक्षिण अमरीका), आदि में हुए हैं ('यूऐस सत्संग', १२/१६, १९८५)।

घोंघों पर नियन्त्रण—

आयरलैण्ड में एक बंजर खेत को उपजाऊ बनाने में घोंघों का व्यापक और खतरनाक प्रकोप प्रारम्भ हुआ। यज्ञ से घोंघे वश में हो गए—थोड़े- से घोंघे स्वाभाविक ढंग से रहे थे, किन्तु ये कोई विशेष हानि नहीं कर पाए।[११]

दुर्बल मुर्गियों पर परीक्षण—

'ऐग्रो बिज़िनैस' की छह पुरानी, अस्वस्थ और दुर्बल मुर्गियों पर भी यज्ञ-राख का प्रयोग किया गया। उनके आहार में यज्ञ की राख मिलाने से तथा उनके शरीर पर उसे डालने से धीरे-धीरे सबकी स्थिति में सुधार हुआ। सबने फिर अण्डे देना आरम्भ कर दिया। दो मुर्गियों ने अपने अण्डों को सेना आरम्भ कर दिया और उनसे बच्चे भी निकले। इस प्रकार, संकरित मुर्गियाँ अण्डे सेना आरम्भ करें और उनके बच्चे जीवित निकलें, यह एक असाधारण, लगभग असम्भव, बात समझी जा सकती है।

१४ मृत्तिका की प्रकृति पर यज्ञ का प्रभाव[५]

यूऐसए, चिली, पोलैण्ड, पश्चिमी जर्मनी, आदि देशों में मृत्तिका की प्रकृति पर यज्ञ के उपयोगी प्रभावों से आकर्षित होकर यूऐसए के पीटर टोम्पकिन्स एवं क्रिस्टोफ़र बर्ड नामक लेखकों ने अनुभवी व्यक्तियों के साक्षात्कार लेकर 'सीक्रेट लाइफ़ ऑफ़ प्लांट्स' नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी, जो संसार में सर्वाधिक बिकनेवाली पुस्तकों में से एक है। इस पुस्तक का प्रकाशन जून, १९८९ में 'हार्पर ऐण्ड रो, न्यू यॉर्क' ने किया है। इस पुस्तक के पृष्ठ २४४–२५१ पर दिये अध्याय में यज्ञ-चिकित्सा की बहुत प्रशंसा की गई है।

बाल्टीमोर (यूऐसए) के 'परमधाम' में ये लेखक अग्निहोत्र के प्रचारक सन्त वसन्त परांजपे से मिले। श्री वसंत ने इन्हें यज्ञ के चमत्कारों के विषय में सविस्तार बताया। जॉन ब्राउन एवं नोनी फ़ोर्ड ने बताया कि होम-कृषि द्वारा उत्पादित उनके आलुओं का रंग तथा स्वाद अत्युत्तम होता है। अवर्षण तथा हिमपात के बाद भी होम-कृषि से वे रसभरी, आडू, नाशपाती तथा सेब की अच्छी फसल प्राप्त करते रहे हैं। जॉन ब्राउन ने बताया है कि होम-कृषि द्वारा वे उच्चतर श्रेणी की फसल उगाते रहे हैं, जिसमें रासायनिक खाद, कीटनाशी तथा शाकनाशी आदि का कोई प्रयोग नहीं करते हैं।

रोबिन्ज़ (यूगोस्लाविया) के वैज्ञानिकों के एक समूह ने उन्हें बताया कि जब वे ताँबे के पिरेमिडी पात्र में अग्नि प्रज्वलित करके हवि डालते हैं तो उसके आस-पास में रेडियो-सक्रियता का प्रभाव नष्ट हो जाता है—चेर्नोबिल (रूस) की दुर्घटना के पश्चात् यह एक असामान्य प्रेक्षण है। इससे उत्साहित होकर यूगोस्लाविया के जीव-वैज्ञानिक, विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्रों के विशेषज्ञ तथा जीवाणु-विशेषज्ञ श्री याटो मोड्रिक को रूस में आकर यज्ञ की विधि का प्रदर्शन देने के लिए आमन्त्रित किया गया था, जिससे सर्वसामान्य जनता लाभान्वित हो सके।

यज्ञ के प्रदूषण-शमन-गुण की व्याख्या श्री फ़्लैनैगन ने इस प्रकार की है—"गोघृत तथा गो-खाद के कोलॉयडी अणु वायु के प्रदूषकों को झपटकर, उनसे संयोग करके, अहानिकारक कण बना लेते हैं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि फिटकरी आदि को जल में डालने से जल की निर्मलता को दूर करने वाले पदार्थों का स्कन्दन (कोएगुलेशन) होने से जल निर्मल हो जाता है। नीचे बैठने वाले ये अणु (कण) मृत्तिका को क्षारीयता प्रदान करते हैं ; और यदि ये कण किसी पौधे की पत्तियों पर बैठ जाते हैं तो ये उसे समयानुसार पोषण देने वाले स्रोत बन जाते हैं। यह सब इसलिए होता है कि भौतिक दृष्टि से गोघृत तथा गोखाद से उत्पन्न धुआँ विद्युदावेशित होता है।"

कृषि विश्वविद्यालय, कानपुर के डॉ० मिश्र एवं डॉ० बी०आर० गुप्त ने १९८९ में 'मैन, ऐन्विरनमैण्ट ऐण्ड अग्निहोत्रा' नामक पुस्तक में भारत के अन्तरराष्ट्रीय प्रसिद्धि-प्राप्त मृत्तिका वैज्ञानिक डॉ० नीलरत्न धर का उद्धरण देते हुए लिखा है कि यज्ञ-राख को मृत्तिका में डालने से कुछ प्रकाश-संश्लेषण क्रियाएँ होने की सम्भावनाएँ हैं, जिनसे वायु की नाइट्रोजन 'स्थिरीकरण' होकर वह मृत्तिका में पहुँच जाती है। और इस प्रकार, मृत्तिका की प्रकृति सुधारने में यज्ञ-राख सहायता करती है।

श्री वसन्त परांजपे ने 'होमा-थिरैपी अवर लास्ट चान्स' नामक एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी है जिसको 'फ़ाइन फ़ोल्ड पाथ इन्को०, मेडिसन (यूऐसए) ने १९८६ ई० में प्रकाशित किया है। इस पुस्तक में वायु-मृत्तिका आदि के प्रदूषण को दूर करने के लिए यज्ञ के महत्त्व को समझाया गया है। यज्ञ-चिकित्सा-पद्धति चिली, यूऐसए, पोलैण्ड तथा जर्मनी में इतनी लोकप्रिय होती जा रही है कि वहाँ के किसानों ने विना रासायनिक खाद तथा कीटनाशी पदार्थों के उपयोग के अच्छी फसल उगानी आरम्भ कर दी है।

उपर्युक्त पुस्तक में बताया गया है कि यज्ञ के वायुमण्डल में केंचुओं की संख्या में वृद्धि होती है। यज्ञ-वायुमण्डल में केंचुओं का हॉर्मोन-स्राव

होता है, जिससे मृत्तिका में नमी उत्पन्न होती है, जो कि मृत्तिका के लिए लाभदायक है। यह निर्विवाद स्थापित सत्य है कि होम-कृषि सस्ती है, इससे स्वास्थ्य के लिए उपयोगी पोषक तत्त्वों से युक्त फसल उत्पन्न होती है तथा फसल का उत्पादन अधिक होता है।

जनवरी, १९८७ में यूऐसए के एक रसायनज्ञ ने वैज्ञानिक प्रयोग के आधार पर सिद्ध किया कि यज्ञ-राख द्वारा मृत्रिका में विद्यमान फ़ॉस्फ़ेट मुक्त होते हैं।[५]

संसार के विभिन्न भागों से यज्ञ-कृषि से प्राप्त सुफलों की घोषणा हो रही है। उन्हीं में से कुछ का उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा।

दक्षिण अमरीका के चिली देश में स्थित ऐण्डीज़ पर्वतों पर फ़्रांसेस्को पेरनाण्डीज़ नामक व्यक्ति वर्षों से होम-कृषि करता आ रहा है। उसके बाग में नारंगी, नींबू, अंगूर, टैंगेरिन्स, आड़ू, नाशपाती, खुबानी, सेब, बादाम, ऐवैकैडोस तथा अंजीर के वृक्ष हैं। इन सभी पर यज्ञ का अच्छा प्रभाव पड़ा है—कुछ वृक्षों ने तो एक वर्ष की आयु में ही फल देना आरम्भ कर दिया है।[५]

जिस स्थान पर प्रतिदिन यज्ञ होता था, उसके समीप में ही 'केनेडील बरवा नेग्रा' किस्म का गेहूँ बो दिया गया। खेत में यज्ञ-राख को प्रयुक्त नहीं किया गया था। यज्ञ से निकलनेवाली केवल वाष्प ही पौधों तक पहुँचती थी। इतने उपचार मात्र से गेहूँ के पौधों की ऊँचाई, सामान्य की तुलना में, बहुत अधिक बढ़ गई और गेहूँ की पैदावार भी दुगुनी हुई।

लिमा बीन (एक सेम) पर यज्ञ-राख का प्रयोग करने से उसके पौधों की ऊँचाई १·६ मीटर तक बढ़ गई, जबकि उस क्षेत्र में सामान्यत: ऊँचाई ०·८ मीटर रहती है ('यूऐस सत्संग', १२/१८—१९, फरवरी, १९८५)।

टमाटर के अप्रमाणित बीजों को प्रयोग करने पर, पौधों पर पुष्प आने के समय, टिज़ोन नामक बैक्टीरिया का प्रकोप (इन्फ़ेक्शन) हो गया। गंधक के उपचार का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अत: यज्ञ-राख को प्रयुक्त

किया गया। इससे फलों का स्वाद अच्छा हो गया तथा फसल की मात्रा भी बढ़ गई।

चुकन्दर की खेती समान्यतः समुद्र के किनारों के स्थानों पर होती है। किन्तु, उन्होंने दो हजार मीटर की ऊँचाई (पर्वत) पर चुकन्दर की फसल को उगाने में, यज्ञ-कृषि द्वारा, सफलता प्राप्त की तथा, उन चुकन्दरों का आकार बड़ा और स्वाद अधिक अच्छा था।

प्रयोग के पूर्व वर्ष में नाशपाती की फसल को 'ग्रैफ़ोलिटा' नामक कीटाणु-रोग लग गया था, जिससे फसल चौपट हो गई थी। अतः आगामी वर्ष होम-कृषि की तकनीक को प्रयुक्त किया गया, जिससे सुन्दर तथा बड़े आकार के फल प्राप्त हुए, जिनका स्वाद अत्युत्तम था और उत्पत्ति (फसल) की मात्रा भी बहुत अधिक बढ़ गई थी।

अंगूर की फसल पर टर्माइट्स नामक कीटाणु-रोग होने पर, कीटनाशी के साथ फ़ॉस्फ़ोरस को प्रयुक्त करने से व्यस्क कीटाणु तो नष्ट हो गए, किन्तु उनके लार्वा (अण्डे) नष्ट नहीं हुए। यज्ञ-राख के विलयन का पौधों पर छिड़काव करने से कीटाणुओं के अण्डे भी पूर्णतः नष्ट हो गए ('यूऐस सत्संग', १२/१८—१९, फरवरी १९८५)।

१५. यज्ञ और किरलियन फ़ोटोग्राफी[५]

प्रत्येक व्यक्ति में मन (माइण्ड) की शक्तियाँ विद्यमान होती हैं, किन्तु हममें से अधिकांश उन शक्तियों से परिचित नहीं होते हैं। इन सुप्त शक्तियों को सक्रिय, उजागर या उद्घाटित करने के लिए, किसी साधन या माध्यम की अपेक्षा होती है। वह साधन या माध्यम यज्ञ हो सकता है। विश्व-प्रसिद्ध पुस्तक 'फ्रॉम मैजिक टू साइकोट्रोनिक्स' के रचयिता, पोलैण्ड देशीय श्री लेक ऐम्फ़ैज़ी स्टिफैंस्की पोलैण्ड की 'रेडिएथीसिया सोसायटी' के सन् १९७६ से अध्यक्ष हैं। सन् १९८१ में जब उनका परिचय यज्ञ से हुआ तबसे यज्ञ सोसायटी का एक अलग विभाग बन

गया है, जिसका कार्यभार श्री ऐस० गोज़्डज़िक सम्भाले हुए हैं। १९८३ में वार्सा में हुई सोसायटी की संगोष्ठी की रिपोर्ट में उल्लेख है कि पश्चिम जर्मनी के डॉ० उर्लिक बर्क ने मुनष्यों तथा पेड़-पौधों पर यज्ञ के सुप्रभावों की व्याख्या की थी। वार्सा के श्री क्रिस्टियाना ओज़रोस्का ने स्नायु-तन्त्र-अव्यवस्था, दमा, चर्म-रोगों, चक्षु, कर्ण तथा हृदय-रोगों के उपचार में मिली अपनी सफलताओं का वर्णन किया था ('यूऐस सत्संग', १०/११, अक्तूबर, १९८५)।

शीला ऑस्ट्राण्डर एवं लिन श्रौडर द्वारा रचित 'साइकिक डिस्कवरीज़ बिहाइण्ड दि आयरन कर्टेन' नामक पुस्तक में मानव 'तेज' की कल्पना प्रस्तुत की गई है। प्राचीन मिस्र, भारत, यूनान तथा रोम में पाई जाने वाली दैवी मूर्तियों के चारों ओर या उनके मुख के चारों ओर एक प्रकाश-वृत्त (तेज) अंकित मिलता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक श्रीमती आईलीन गैरेट्ट ने अपनी प्रसिद्ध 'अवेयरनैस' नामक पुस्तक में लिखा है कि, "मैंने प्रत्येक पौधे, पशु तथा व्यक्ति को एक धुंधले आवरण से घिरा हुआ देखा है; दर्शक की चित्तवृत्ति (भाव) के अनुसार इस आवरण का रंग तथा घनता परिवर्तित होती रहती है।" रोग, भावना, मन:स्थिति, विचार तथा श्रम, आदि इन सभी का इस मानवीय सूक्ष्म ऊर्जा के आकार (पैटर्न) पर प्रभाव पड़ता है, जिससे उसका आवरर्णित तेज प्रभावित होता है।

उच्च आवृत्ति (पिछत्तर हजार से दो लाख दोलन प्रति सेकण्ड पर्यन्त) के विद्युतीय क्षेत्र में रखने पर, मानव का यह तेज-पुंज दृष्टिगोचर हो जाता है, जिसका फ़ोटो लिया जा सकता है। मानवीय तेज की अवधारणा को सर्वप्रथम सन् १९३९ में क्रान्सनोडास (रूस) में सेमयोन डैविडोविच किरलियन नामक वैज्ञानिक ने मूर्त्त रूप दिया, जिसने किरलियन फ़ोटोग्राफी की इस तकनीक को विकसित किया। इस तकनीक के द्वारा जीवित वस्तुओं में जीवधारी रचना की आन्तरिक स्थिति के संकेतों को चमकीलापन, धुँधलापन तथा चमक के रंगों के रूप में देखा

जा सकता है। रूसी तथा अन्य वैज्ञानिकों ने इसमें रुचि लेकर इसको

विविध क्षेत्रों में अनुप्रयुक्त करने की दृष्टि से विकसित किया है।[५]

रोडोल्फ़ ज़ेल (पश्चिम जर्मनी) के मेथिआस फ़ेह्रिंजर ने यज्ञ-राख तथा किरलियन फ़ोटोग्राफी से सम्बन्धित प्रयोगों की एक लम्बी शृंखला सम्पादित की है।

मन की विभिन्न अवस्थाओं में, एक व्यक्ति की तीन दिनों की सामान्य स्थितियों में, उस व्यक्ति के अंगूठे के तीन किरलियन फ़ोटोग्राफ लिए गए। इसी प्रकार, तीन दिनों के किरलियन फ़ोटोग्राफ पुनः लिए गए, जबकि उस व्यक्ति ने यज्ञ-राख अपनी मुट्ठी में बन्द की हुई थी। पहली बार के किरलियन फ़ोटोग्राफ की तुलना में, दूसरे फ़ोटोग्राफ से प्रदर्शित हुआ कि यज्ञ-राख के कारण, इसमें अधिक ऊर्जा थी, प्रभामण्डल के बाह्य भाग में घनत्व अधिक था तथा प्रभामण्डल बहुत सुदृढ़ था।

इस प्रकार के प्रयोगों से निष्कर्ष निकाला गया कि मानवों तथा पौधों पर यज्ञ का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यज्ञ से होनेवाले लाभों से प्रभावित होकर, संसार के चार देशों—यूऐसए, चिली, पोलैण्ड तथा जर्मनी में यज्ञ पर अनुसन्धान-कार्य तथा इसका प्रचार निरन्तर बढ़ रहा है।

यज्ञ के विषय में एक शंका का समाधान—

कुछ पढ़े-लिखे व्यक्ति कहते हैं कि यज्ञ करने में लकड़ी आदि जलाने से कार्बन डाइ-ऑक्साइड गैस उत्पन्न होती है; इससे वायु-प्रदूषण बढ़ता है। वे नहीं जानते हैं कि संसार में अनेक प्राकृतिक क्रियाएँ चल रही हैं, जिनमें यह गैस उत्पन्न होती है किन्तु परिस्थितिक सन्तुलन बना रहता है। यज्ञ की क्रिया द्वारा ही प्रदूषण उत्पन्न करने वाले अणु टूटकर अहानिकारक अणु बनाते हैं। अतः यज्ञ में उत्पन्न गैस से हानि कम और यज्ञ-क्रिया से लाभ अधिक है। यज्ञ से अधिक अच्छी और सस्ती विधि आज प्रदूषण को दूर करने की ज्ञात नहीं है।

१६. यज्ञ की महिमा

"यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्" (अथर्ववेद, २०/२७/५)
(यज्ञ करने से ऐश्वर्य और सुख की वृद्धि होती है।)
"यज्ञं तपः" (तैत्तिरीय आरण्यक)
(यज्ञ करना (सर्वोत्तम) तप है।)

मनुस्मृति (३/७६) का मत है कि "अग्नि में डाली हुई आहुति सूर्य-लोक तक जाती है। यजमान को यज्ञ का कई गुना फल प्राप्त होता है।"

यज्ञ से प्राण की शुद्धि होती है, इसीलिए यजुर्वेद (९/१२) में यज्ञ को अमृत कहा गया है।

कुछ अन्य लोगों ने "स्वर्गकामो यजेत्" कहकर यज्ञ को स्वर्ग-प्राप्ति का साधन माना है।

अथर्ववेद (२/११/६) के अनुसार—यज्ञ द्वारा परिष्कृत वायु से प्राणी वृद्धावस्था तक निरोग एवं सुखमय जीवन जी सकता है।

अथर्ववेद (१९/३८/१) में होम-चिकित्सा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि हवन से राजयक्ष्मा (टीबी) सदृश भयंकर रोगों से छूटकर आरोग्य प्राप्त होता है।

शास्त्रों में 'स्वर्गकामो यजेत', 'अन्नकामो यजेत', 'धनकामो यजेत'; 'पुत्रकामो यजेत' तथा 'आयुष्कामो यजेत' शब्दों द्वारा यज्ञ को समस्त ऐश्वर्य-प्रदाता कहा गया है।[११]

अथर्ववेद (१२/२/३७) की चेतावनी है कि यज्ञ के विना वर्चस्व नष्ट हो जाता है। अथर्ववेद (१८/४/२) के अनुसार, यज्ञ के प्रयोगकर्त्ता सुख और समृद्धि की पराकाष्ठा प्राप्त कर लेते हैं।

वेद जहाँ वृक्ष-वनस्पतियों के लगाने का उपदेश देता है, वहाँ "शनु सन्तु यज्ञाः" (ऋग्वेद ७/३५/६) कहकर यज्ञ द्वारा सुखकारी वायुमण्डल के निर्माण हेतु नुस्खे भी बताता है। "समिधाग्नि दुवस्यत... हव्या

जुहोतन" (यजुर्वेद ३/१) में से भेषज वायु से पर्यावरण-परिशोधक यज्ञ का दूसरा नुस्खा बताते हुए कहा है कि यज्ञीय वृक्षों की छिलका चढ़ी हुई समिधाओं को घृत की आहुतियों से प्रचण्ड करके उससे हवि-पदार्थों की आहुतियाँ प्रदान करो, इससे पर्यावरण शुद्ध होगा।

भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखने से स्पष्ट होता है कि यज्ञ-सृष्टि-विज्ञान, प्रकृति-विज्ञान, मनोविज्ञान, आध्यात्म-विज्ञान, स्वास्थ्य-विज्ञान, पर्यावरण-शोधन-विज्ञान, वातभेषज-निर्माण-चिकित्सा-विज्ञान तथा मन्त्र-विज्ञान, आदि अनेक विद्या-विज्ञानों से ओत-प्रोत है। अतः, यज्ञ महाविज्ञान है।[१३]

इसलिए शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति चाहने वाले प्रत्येक मनुष्य को प्रतिदिन यज्ञ अवश्य करना चाहिये।

१७. संदर्भ-ग्रंथ

१. 'अथर्ववेद', टीका० क्षेमकरण त्रिवेदी। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली।

२. 'ज्ञान सुधा', भाग ७, हेम रैना। पृष्ठ ९१, अम्बर प्रकाशन, दिल्ली।

३. 'तपोभूमि' (मासिक), अप्रैल, १९८७, तपोभूमि, मथुरा, उ० प्र०।

४. 'परम सद्गुरु', माधवजी पोतदार, १९८२। प्रकाशकः नलिनी माधव जी, भोपाल, म० प्र०।

५. 'अग्निहोत्र', मनोहर माधवजी पोतदार। इन्स्टीट्यूट फ़ोर स्टडीज़ इन वैदिक सांइसिज़, अक्कलकोट, महाराष्ट्र।

६. 'ईश्वर-उपासना-विधि', डॉ० वेदप्रकाश, १९८६। वैदिक धर्म-रक्षा-सभा, मेरठ, उ० प्र०।

७. 'पावमानी' (त्रैमासिक), भाग २, जुलाई-सितम्बर, १९९०। गुरुकुल प्रभात आश्रम, भोला-झाल, मेरठ, उ० प्र०।

८. "रोल ऑफ़ एन्विरन्मेण्टल फ़ैक्टर्स/कार्सिनोजेन्स इन दि कॉमन्ली ऑकरिंग कैन्सर ऑफ़ दि ऐलिमेण्टरी ऐण्ड रेस्पिरेटरी ट्रैक्ट्स इन दि कण्ट्री", ऐन० नोतनी पेरिन। प्रोसीडिंग्स ऑफ़ सिम्पोज़ियम ऑन एन्विरन्मेण्टल म्यूटाजीनेसिस ऐण्ड कार्सिनोजीनेसिस, १५वीं एन्वल कॉन्फ़्रेंस ऑन

एन्विरन्मेण्टल म्यूटाजीनिक सोसाइटी ऑफ़ इण्डिया, बीएआरसी बॉम्बे, १९९०, १०५ ।
९. 'संस्कार विधि', स्वामी दयानन्द सरस्वती, १९७१ । रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, हरियाणा ।
१०. 'यूऐस सत्संग' (मासिक), यूऐसए ।
११. 'अग्निहोत्र यज्ञ', स्वामी विवेकानन्द सरस्वती । गुरुकुल प्रभात आश्रम, भोला-झाल, मेरठ, उ० प्र० ।
१२. 'क्रीएटिंग आइडियल सोसाइटी' । इण्टरनेशनल ऐसोसिएशन फ़ॉर दि ऐडवांसमेण्ट ऑफ़ सांइस ऑफ़ क्रीएटिव इण्टेलीजेन्स, जर्मनी, १९७९ ।
१३. 'तपोभूमि' (मासिक) । दिसम्बर, १९८७, तपोभूमि, मथुरा, उ० प्र० ।
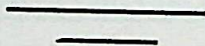
हमारे आगामी आकर्षण

१. कौन कहता है राधा थी?

डॉ० जगदीशप्रसाद

२. ईश्वर-उपासना-विधि

डॉ० वेदप्रकाश

वैदिक प्रकाशन

एन-एच १७, पल्लवपुरम-२

मेरठ (उत्तर प्रदेश)—२५०११०